मार्च २०११

दादावाणी

मूल्य: ₹ १०



यदि सामनेवाला रस्सी ज्यादा खींचता हो और हम भी उस रस्सी को हमारी ओर ज्यादा खींचे, तब फिर क्या होगा? खेंच (पकड़) ही सबसे बड़ा दूषण है।

तंत्री तथा संपादक :
डिम्पल महेता
वर्ष : ६, अंक : ५
अखंड क्रमांक : ६५
मार्च २०११

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सीटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : (079) 39830100
e-mail :
dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org

Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.
Owned by
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.
Printed at
Amba Offset
Basement, Parshvanath
Chambers, Nr.RBI,
Usmanpura, Ahmedabad-14.
Published at
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.
Editor : Dimple Mehta

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
१५ साल का
भारत : ८०० रुपये
यु.एस.ए. : १५० डॉलर
यु.के. : १०० पाउन्ड
वार्षिक
भारत : १०० रुपये
यु.एस.ए. : १५ डॉलर
यु.के. : १० पाउन्ड
भारत में D.D./M.O. 'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

खेंच की पकड़ में 'खुद' गिरफ़्त

संपादकीय

'मैं सच्चा हूँ, मेरी बात सच्ची है', ऐसी मान्यता किसमें नहीं प्रवर्त रही होगी? फिर चाहे वो संसारी हो, साधु हो या फिर मोक्ष के पंथ पर प्रयाण करता हुआ महात्मा हो। सभी लोग इन मान्यताओं के प्रर्वतन से मुक्त नहीं रह सकते। इस आग्रहपूर्वक के प्रवर्तन को परम पूज्य दादा भगवान '*खेंच*' के तौर पर पहचान करवाते हैं। *खेंच* अर्थात् क्या? तब कहे, खुद की बात सही ठहरवाने के लिए बार-बार उस बात की पैरवी करना। *खेंच* सबसे बड़ा दूषण है।

जहाँ *खेंच* होती है वहाँ किसी भी प्रकार का सत्य नहीं होता। खुद की बात सही ठहराने के लिए ज़िद पर उतरता है (बहस करता है) और ज़िद पर उतरना मतलब क्या? खुद का स्थान छोड़कर नीचे गिरना। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे इस तरह का व्यवहार कैसे पुसाएगा? इसलिए पूज्य दादाश्री कहते हैं कि आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद हमारा जीवन बिना *खेंच* का होना चाहिए।

सामान्य रूप से समझाकर व्यवहार करना चाहिए, लेकिन उस बात की पकड़ नहीं होनी चाहिए। पकड़ से ही बोझ बढ़ता है और वो बोझ ज्ञान के आनंद का अनुभव नहीं करने देता। खुद की इन भीतरी पकड़ों के कारण ही मुक्त हास्य अटका हुआ है न? ज्ञानी को देखो! *खेंच*-पकड़ रहित हो गए तो कैसा मुक्त हास्य छलकता है! ज्ञानी पुरुष निरंतर मुक्त अवस्था में होते हैं! एक क्षण के लिए भी किसी अवस्था में बँध नहीं जाते! उनके दर्शन मात्र से ही उल्लास व्याप्त हो जाता है!

हम सब भी आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद ऐसी दशा को प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु भीतर कषायों की गाँठें हैं, इसलिए भीतर *खेंच* रहती है। *खेंच* पुद्गल की है और आत्मा तो उससे एकदम अलग है, उससे निराला है। लेकिन उसे अनुभव में आने से कौन रोकता है? '*खेंच*-पकड़।' पकड़ पकड़ना गुनाह है और उसीसे ये सारा दु:ख है। पकड़ बुद्धि पकड़वाती है और अहंकार पागलपन करवाता है। फिर कैसे बरकत आए? पकड़ पकड़ते हैं इसलिए आगे का मार्ग रुक जाता है, प्रगति रुक जाती है।

अपना तो एकावतारी होने का ध्येय है, तो फिर इस *खेंच* की पकड़ में पकड़े जाना हमें किस तरह पुसाएगा? मोक्षमार्ग में *खेंच* एक बड़ा भयस्थानक है। इसलिए उसे विस्तारपूर्वक ज्ञानी के पास से समझकर निरंतर सावधान रहना चाहिए। *खेंच*-पकड़-आग्रह ये सभी मोक्ष में जाने के लिए गलत वस्तुएँ हैं, ऐसा जब से समझ में आ गया तब से जागृति की शुरूआत हो जाती है। वो जागृति बढ़ते-बढ़ते अनुभव की कक्षा तक पहुँच सके ऐसा पुरुषार्थ आरंभ कर सकें, ज्ञानी की तरह निर्ग्रंथ होकर मुक्ति का स्वाद अनुभव कर सकें, उसके लिए प्रस्तुत संकलन हम सभी को उपयोगी बने, यही अभ्यर्थना है।

जय सच्चिदानंद....

पाठकों से...

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेजी शब्द का अर्थ है अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। पाठक जहाँ पर भी चंदुभाई नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधार कर समाधान प्राप्त करें। भाषांतर में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी हैं।

खेंच की पकड़ में 'खुद' गिरफ़्त

जीवन, बिना खेंच का

प्रश्नकर्ता : दादा का 'ज्ञान' मिलने के बाद साधारण तौर पर जीवन कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : बिना *खेंच* का जीवन जीना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : *खेंच* किस तरह करता है?

दादाश्री : यदि आप मेरे साथ बात करते हों और मैं आपको उस बात का जवाब दूँ। फिर भी आपकी वो बात सही ठहराने के लिए आप फिर से बात करो, उसे *खेंच* कहते हैं। इस तरह बार-बार *खेंच* रखता है। यदि 'ज्ञान' लिया हो तो *खेंच* होती ही नहीं है न! और यदि *खेंच* हो, तो उसे निकाल देना चाहिए। क्योंकि वो गलत है। निकालें, फिर भी नहीं निकले तो कोई हर्ज नहीं। *खेंच* हो, तो *खेंच* को भी 'आपको' देखना है, तो 'आप' छूट गए! *खेंच* को भी आप देखो तो छूट गए। तो आप हमारे नियम में हो!

खेंच अलग वस्तु है। *खेंच* मतलब, मैं कहूँ कि, 'नहीं भाई, ऐसा है।' तो फिर आप अपना सत्य ठहराने के लिए बार-बार अपनी बात सही बताओ, उसे *खेंच* कहते हैं। और *खेंच*वाले के पास, जहाँ *खेंच* हो वहाँ किसी भी प्रकार का सत्य नहीं होता। *खेंच* ही सबसे बड़ा दूषण है। और अगर *खेंच* नहीं हो, तो फिर यदि कोई कहे कि 'आपकी ये बात मुझे पसंद नहीं है', तो सामनेवाला कहेगा 'लो, मैं मेरी बात बंद रखता हूँ!' दूसरी कोई झँझट ही नहीं न!

दलीलों का घर, अजागृति

प्रश्नकर्ता : खुद का सही ठहराने के लिए यदि कोई व्यक्ति बहुत ही दलीलों पर उतर आए और खुद का सही ठहराने का प्रयत्न करे, तब ऐसा समझना चाहिए कि 'बेझ' (आधार) गलत है!

दादाश्री : किन्तु वो खुद की दलीलें भी जागृतिपूर्वक नहीं करता। अजागृति हो तो ही दलील करता है न! व्यक्ति अजागृत हो तब दलील करता है। जागृतिवाले क्या कभी दलील करते होंगे?

प्रश्नकर्ता : दलील करना सही है या गलत?

दादाश्री : संसार में रहना हो तो सही है। यदि आपको संसार में कुछ करना हो तो सही है, किन्तु यदि मोक्ष में जाना हो, तो गलत है। संसार में, यदि आप दलीलें नहीं करोगे तो लोगों के साथ नहीं निबाह सकोगे। और सत्संग में तो दलील वस्तु ही गलत है। 'ज्ञानी पुरुष' ने जो भी कहा उसमें हमें फिर कुछ बोलने जैसा ही नहीं होता। सत्संग की बाबत में, बोलने जैसा नहीं होता। व्यवहार में बोलना चाहिए। व्यवहार में आपको ऐसा कहना चाहिए कि, 'दादाजी, इस गाड़ी में मत जाइए, ये दूसरी गाड़ी में जाइए।' किन्तु सत्संग में? सयाने, ज़रूरत से ज़्यादा सयाने! 'ओवरवाइज़' कहना पड़ता है हमें!

टकराव से ही खड़ा है ये संसार

ये तो 'साइन्टिफिक' विज्ञान है। कई लोग मुझसे कहते हैं कि, 'नियम बनाओ, ऐसा करो, वैसा करो।' अरे, किस तरह के मनुष्य हो, कि आपको

ऐसा विज्ञान मिला फिर भी आप सयाने नहीं हुए? कैसा विज्ञान है! ज़रा-सा भी टकराव नहीं हो, ऐसा।

प्रश्नकर्ता : अब तक तो नियम बनाकर ही लोगों को सयाने बनाने का रास्ता था।

दादाश्री : हाँ, लोगों के लिए बराबर है। किन्तु हमें तो मोक्षमार्ग पर जाना है। लोगों को तो संसार में भटकना है, इसलिए उनको नियम की ज़रूरत है। बाकी, नियम से तो टकराव होता है और टकराव से वापस संसार खड़ा होता है।

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग पर जाने के लिए भी नियम बताएँ हैं?

दादाश्री : मोक्षमार्ग में नियम नहीं होते। और यहाँ तो नियम या कुछ भी नहीं, सहजासहज। सहज ही जो हुआ वो सही।

ज़िद पर अड़ने का परिणाम

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि, 'जहाँ मोक्ष है वहाँ नियम नहीं है, नियम है वहाँ मोक्ष नहीं है, परम विनय से मोक्ष है।' तो फिर परम विनय में सबकुछ आ गया?

दादाश्री : हाँ, परम विनय में सबकुछ आ गया। यदि नियम बनाने जाएगा तो फिर, उदाहरण के तौर पर, तुलसी का पौधा रोपा और चूहा उस पौधे को काट गया, इसलिए बिल्ली को रखा। बिल्ली ने दूध बिगाड़ दिया इसलिए कुत्ते को रखो। क्या इसका कभी अंत आएगा? इसलिए हमारे यहाँ 'नो लॉ, लॉ' का नियम है। और हमने तो 'विज्ञान' दिया है। इसमें इधर-उधर करने जाता है, दख़ल करने जाता है, वो ही उसका पागलपन है। उसे तो 'ऑवरवाइज़'पन (ज़रूरत से ज़्यादा सयानापन) कहते हैं!

यहाँ तो कैसा है? बहुत सयाना रहना है। परम विनय शब्द कहा, तो उसका अर्थ इतना समझ लेना है कि बिना काम का कुछ भी बोलना नहीं है। काम का हो तो बोलना है।

परम विनय में, खुद का मत ही नहीं होता। भीतर जो भी कुछ हिल जाता है (असर होता है) उसे 'देखता रहता है', कोई *खेंच* नहीं पकड़ता।

खुद का सयानापन या खुद की अक़्ल यहाँ खुली नहीं करनी है। आपकी सारी अक़्ल नक़ल की हुई है, असली नहीं है। मतलब लोगों का देखकर सीखा है, किताबों से सीखा है! और फिर बहस करते वक्त अटकते भी नहीं हो। अरे, बहस करते वक्त आपको पता नहीं चलता कि ये बहस हो रही है?

बहस करना मतलब खुद का स्थान छोड़कर नीचे गिरना!

खेंच रखनेवाला मूर्ख बनता है

दादाश्री : तुम्हारी लोगों के साथ *भांजगड़* नहीं होती (बखेड़े नहीं होते)?

प्रश्नकर्ता : घर में थोड़ी होती है।

दादाश्री : घर में और कहाँ होती है? भाई के साथ होती है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जो कुछ भी बँटवारा करने का हो तो कर लो न, फिर नहीं होगी। बँटवारा करने का है कुछ?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा तो कुछ भी नहीं है।

दादाश्री : तो फिर क्या है?

प्रश्नकर्ता : अमुक मान्यताएँ हैं। एक-दूसरे के प्रति मिसअन्डरस्टेन्डींग (गलतफ़हमी) रहती है।

दादाश्री : मिसअन्डरस्टेन्डींग जैसा रहा ही कहाँ? जो खींचेगा उसकी तरफ़ हो जाता है। वो खींचे तो हमें छोड़ देना चाहिए, वर्ना टूट जाता है। फिर गाँठ लगानी पड़ती है। वो खींचे तो हमें समझ

लेना चाहिए कि ये तो खिँचनेवाले हैं। हमारे यहाँ तो, जो नहीं खींचेगा उसका कल्याण हो जाएगा। खिँचनेवाले को कभी न कभी पछतावा करके अपनी बात छोड़नी पड़ेगी न? अमुक लोगों को ये बात भी समझ लेनी चाहिए न? तो फिर झगड़ा करने जैसा रहा ही कहाँ? यदि दोनों खींचेंगे तो टूट जाएगा और टूट जाएगा तो फिर गाँठ लगानी पड़ेगी। दोनों खींचें, तो दोनों मूर्ख कहलाते हैं न?

प्रश्नकर्ता : बाद में पछतावा होता है। रस्सा टूट जाए फिर पछतावा होता है।

दादाश्री : गाँठ लगानी पड़ती है, तो फिर पछतावा नहीं होगा? बिना गांठ का अच्छा नहीं था? फिर गाँठ लगाकर चलाने लगे, उसे उपयोग ही नहीं कहा जाता न! उपयोगवाले तो गाँठ पड़ने ही नहीं देते। उपयोगवाले को *खेंच* नहीं होती।

खेंच मतलब एडजस्टमेन्ट उड़ गया। एडजस्टमेन्ट उड़ गया तो फिर हो गया। खत्म!

अभिप्राय मुर्दे जैसे हों, बिना *खेंच*वाले हों तो हर्ज नहीं है, जल्दी हल आ जाता है। लेकिन जो अभिप्राय *खेंच*वाले हैं, वो ज्ञान पर आवरण लाते हैं।

चिढ़ाने से उत्पन्न होता है अज्ञान

प्रश्नकर्ता : ऐसी वीकनेस (कमज़ोरियाँ) तो बहुत है, दादा। ऐसी कमज़ोरियाँ तो बहुत पड़ी हुई हैं।

दादाश्री : नहीं, वो तो जब तक बाहर से सीधा दिखता है, तब तक। जब छेड़ें, उस घड़ी पता चलता है! बाहर से तो एकदम मुलायम दिखता है, लेकिन ज़रा-सा छेड़ो तब....

प्रश्नकर्ता : छेड़ने से वीकनेस खड़ी होती है।

दादाश्री : मतलब तो अज्ञान खड़ा हो जाता है। भीतर तो माल अज्ञान का भरा है। वैसे, बाहर ज्ञान होता है, लेकिन अज्ञान खड़ा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : भीतर पछतावा बहुत होता है कि ये सब किस लिए? ऐसा सब चलेगा नहीं।

दादाश्री : इसलिए सावधान रहो। उपयोग तो उसे कहते हैं कि पछतावा करने की बारी ही नहीं आए। फिर भी यदि चूक गए तो प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति एकदम से उछलती है।

दादाश्री : उछलती हुई इस प्रकृति को देखना, उसे उपयोग कहते हैं। फिर से ऐसा मौका मिलनेवाला नहीं है। अभी जो मौका हाथ लगा है ऐसा मौका फिर मिलेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

अहंकार से बाँधती है खेंच

प्रश्नकर्ता : हम जो *खेंच* रखते हैं, वो अपनी स्वतंत्रता से है?

दादाश्री : उस समय तो अहंकार निकलता है। अहंकार से बाँधता है। हमारा तो ये बिना *खेंच*वाला मार्ग है। *खेंच* नहीं होती।

आग्रह, वह अहंकार का फ़ोटो है। सामनेवाले का अहंकार उसके आग्रह से पता चल जाता है।

हमारा तो निराग्रही मार्ग! कोई ऐसा कहे कि, 'बाहर अँधेरा है' तो हम उसे कहें कि 'हम बिनती करते हैं, ज़रा फिर से तो देख।' तो भी वह कहे, 'नहीं, अँधेरा ही है।' तो हम समझ जाएँ कि इसके साथ सुबह तक रहना कैसे पुसाएगा? तब हमें वहाँ से चले जाना चाहिए। 'तेरी दृष्टि से बराबर है', ऐसा कहकर चलने लगो। 'हमारी गलती थी' ऐसा कहकर चलने लगो। वीतराग मार्ग किसीको भी दुःख नहीं देता, हमें वहाँ से चले जाना चाहिए।

यदि 'व्यवस्थित' को पूरी तरह से समझते हों, तो *खेंच* होती ही नहीं। सामनेवाले से कहना

चाहिए कि 'आपको जैसा अनुकूल आए वैसा करो।' हमें अनुकूल हो जाना है। 'व्यवस्थित' के बाहर कुछ भी नहीं होता।

कोने-कोने में फैली हुई खेंच

प्रश्नकर्ता : ये 'व्यवस्थित' हुआ है, ये जो भी हुआ वो 'व्यवस्थित' के बाहर नहीं हुआ है। 'हुआ वो करेक्ट' हुआ है, ऐसा कहते हैं, लेकिन.....

दादाश्री : 'व्यवस्थित' बोलते तो हो, लेकिन *खेंच* फिर भी रही है। भीतर कितनी सारी *खेंच* रही हुई है?

प्रश्नकर्ता : दादा, इस भूल को समझाइए।

दादाश्री : वो अंदर कोने में, जमा रहती है।

प्रश्नकर्ता : अब तो कोई *खेंच* नहीं रही है, दादा।

दादाश्री : आपको ऐसा लगता है। भीतर *खेंच* रहती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, वो भूल दिखाइए, कि कौन-सी *खेंच* है, तो फिर हम उस भूल को सुधार लेंगे।

दादाश्री : मैं कहाँ बताऊँ रोज़-रोज़?

प्रश्नकर्ता : बताओगे, तो मैं भूल सुधार लूँगा, दादा।

दादाश्री : नहीं। आप सुधार लो, आपको पता नहीं चलता? *खेंच* हो तो क्या हमें पता नहीं चलता कि फिर से *खेंच* रखी? भीतर, देखकर सब जाँच करो, निरीक्षण करो।

प्रश्नकर्ता : दादा, और कोई *खेंच* नहीं है। निरंतर दादा के पास ही रहना है, ऐसा भाव है। घर में कोई *खेंच* नहीं है, और घर से तो अनुमति लेकर निकला हूँ। घर से सभी की इजाज़त लेने के बाद आया हूँ।

दादाश्री : *खेंच* नहीं है वो भी मैं जानता हूँ। *खेंच* नहीं हो, लेकिन जो भी है वो खटकता तो है न? हुआ वो 'व्यवस्थित' ऐसा रहे तो कभी नहीं खटकता। लेकिन ये सब तो खटकता है। ऐसा माल भरकर घूमते रहते हो, उसमें क्या फ़ायदा मिलेगा? ये तो दूसरा कुछ भी करने नहीं देता।

सेवा की खेंच

प्रश्नकर्ता : दादा की सेवा की बाबत में हमें थोड़ा-सा ऐसा (*खेंच*) रहता है।

दादाश्री : सेवा की इच्छा ही नहीं रहनी चाहिए। जो सेवा प्राप्त हुई, वो ही अपनी सेवा, जिससे सौ प्रतिशत सुख मिले। और यदि इच्छा हुई तो फिर अग्नि बनेगी। उसे तो भयंकर रोग कहते हैं, किस चीज़ की इच्छा? हम कोई भिखारी हैं कि किसीके पास भीख माँगे?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष की सेवा करने के लिए भिखारीपन कहाँ लगनेवाला है? ज्ञानी पुरुष के लिए ऐसी इच्छा रखें तो भिखारीपन नहीं लगता न?

दादाश्री : उसे भिखारीपन ही कहा जाता है! ज्ञानी पुरुष के पास या चाहे किसीके पास, भिखारी ही कहलाता है। ऐसा करके हमारा सुख खो देते हैं, वर्तमान में जो सुख बरतता है, वो सुख खो देते हैं। किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। इच्छा तो प्रकट अग्नि है। इच्छा हो तो उसे निकाल देनी चाहिए, बीज के साथ ही। ज्ञानी पुरुष की क्या सेवा करनी है? और उन्हें वो सेवा ही कहाँ चाहिए?

प्रश्नकर्ता : आपको तो किसीकी सेवा नहीं चाहिए, किन्तु अपने लिए हमें सेवा करनी है।

दादाश्री : लेकिन इसका कोई मतलब ही नहीं है न! ये तो पागलपन है, एक मेडनेस! सेवा तो, उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करें, उसे सेवा कहते हैं। कृपा प्राप्त करना। तो वो कृपा कैसे प्राप्त होती है? हमारी आज्ञा में रहो तब।

प्रश्नकर्ता : मुख्य वस्तु यही है।

दादाश्री : सेवा में रहना नहीं है, आज्ञा में रहना है। सेवा तो माँ-बाप की करनी है।

प्रश्नकर्ता : माँ-बाप की सेवा के लिए *खेंच* भी नहीं होती और आग्रह भी नहीं होता।

दादाश्री : तभी पगले हैं न! उन्हें पगले मनुष्य कहते हैं। जो माँ-बाप इतना उपकार करते हैं, उन्हें नहीं समझते उसे पागलपन कहते हैं। मतलब पहले माँ-बाप की सेवा। दूसरे नंबर पर ज्ञानी की सेवा।

प्रश्नकर्ता : किन्तु माँ-बाप से भी ज़्यादा सर्वस्व ज्ञानी को ही माना होता है न?

दादाश्री : जो माँ-बाप की सेवा नहीं करता, वो मनुष्य, मनुष्य ही नहीं कहलाता! सबसे पहले माँ-बाप की सेवा, फिर ज्ञानी पुरुष या गुरु की सेवा। फिर तीसरे नंबर पर भगवान की सेवा आती है। रिश्ता तो माँ-बाप का और गुरु का, जो हमें समझ देते हैं, उनका रिश्ता।

खेंच जाए, तो कृपा उतरती है

प्रश्नकर्ता : मतलब मैं मन के कहे अनुसार चलता था, उसका कारण *खेंच* ही था!

दादाश्री : हाँ, *खेंच*, बहुत भारी *खेंच*!

और *खेंच* ने तुम्हारा बहुत नुकसान किया है। वर्ना दो वर्षों में तो कितनी कृपा उतर जाती! इसे, सिन्सियारिटी नहीं है ऐसा तो नहीं कह सकते। किन्तु कितनी सारी भूलें! हमें, दवा देनी हो फिर भी बहुत बार तो सारा दिन दवा दी ही नहीं होती। मतलब भूलों के प्रमाण क्यों ऐसे रहते हैं? फिर मुझे लगता है कि क्या दिमाग़ कमज़ोर है? कोई बात नहीं, ये *खेंच* चली जाएगी तो भी बहुत हो गया। कृपा उतरेगी तो सब राह पर आ जाएगा। कृपा उतरती है न? और सेवा तो अपना हिसाब ही है। अपना हिसाब होगा तो कोई ले लेनेवाला नहीं है और यदि कोई ले लेनेवाला है, तो वो सेवा अपनी नहीं है। सब व्यवस्थित है। इनमें से कोई *खेंच* रखता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : भीतर फ़िट हो गया तो हो गया, वर्ना कोई बात नहीं।

प्रश्नकर्ता : किन्तु दादा, सब तो ऐसा तय करते हैं कि आत्मा का कर लेना है। ज्ञान का पूरा कर लेना है। लेकिन मैंने तो ऐसा तय किया कि मुझे दादा की सेवा ही करनी है। इसलिए फिर उसके अनुसार ही चलता रहा।

दादाश्री : बस, सिर्फ कर लेना है। किन्तु साथ-साथ समझना चाहिए न कि भीतर इससे क्या लाभ हुआ? दो महीने होने के बाद हमें हिसाब निकालना चाहिए न? लाभ तो क्या हुआ किन्तु दादा को ऐसा पसंद ही नहीं है। फिर तू ऐसा मानता है कि दादा की मुझ पर कृपा नहीं है। दादाजी जान-बूझकर मुझ पर कृपा रखते नहीं हैं, ऐसा तुझे लगता है। इन सभी बातों का तुम्हें दोष लगता है। इसलिए तुम्हें तो बहुत प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। दादाजी के बहुत प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। खुद की समझ से इस प्रकार दोष देखने से फिर कितने दोष लग जाते हैं! नासमझी के दोष। जान-बूझकर, इरादेपूर्वक दोष नहीं देखता, किन्तु वे सारे दोष फल तो देंगे ही न! हम कहें कि हम ऐसे नहीं हैं, तो फिर मान लेता है। लेकिन वापस मूल स्वभाव पर चला जाता है!

प्रश्नकर्ता : फिर भी एक वस्तु फ़िट हो गई है कि, 'दादा जो कुछ भी करते हैं वो मेरे हित के लिए है।' ऐसा फ़िट हो गया है।

दादाश्री : फ़िट हो गया है, वो बात सच्ची है। इसलिए तो यहाँ पर रुका हुआ है, वर्ना रहता नहीं। इतनी बात फ़िट हो गई है। 'ये जो कुछ करते

हैं वो मेरे हित के लिए है' उतना फ़िट हो गया है। अरे, ऐसा योग ही कहाँ मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं मिलेगा।

दादाश्री : ये योग कोई पैसे खर्च करने से मिलेगा? लाखों रुपये खर्च करने से?

प्रश्नकर्ता : कभी नहीं मिलेगा।

दादाश्री : नीरुबहन क्या कहतीं हैं, 'मार डालोगे तो भी मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी।' ऐसे मरने से क्या फ़ायदा?

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर अब दो ही बात है। या तो दादा या मृत्य। ये दो छोड़कर तीसरा कुछ नहीं चाहिए।

दादाश्री : तीसरा आए तो भी हर्ज क्या है?

सापेक्ष सत्य की पकड़ें

इस दुनिया में सत्य वस्तु होती ही नहीं है। सत् अविनाशी है। दूसरा कोई सत् होता ही नहीं। दूसरा सब सापेक्षभाव है। और देखो न, उसकी पकड़ पकड़ते हैं।

अर्थात्, ये सत्य कैसा है? रिलेटीव सत्य है। पाँच बजकर पचास मिनट पर जो सत्य था वो साठ मिनट होने पर झूठा हो जाएगा। इसलिए इसकी पकड़ मत पकड़ना। किसी भी सत्य वस्तु की पकड़ नहीं पकड़नी चाहिए। जिस पानी से मूँग सीझे उस पानी से मूँग सिझाना। सिझाना ही है तो गटर का पानी ही सही, लेकिन जल्दी सिझा दे। मतलब, जिस पानी से भी सिझे उस पानी से सिझाकर काम को आगे बढ़ाना है। किसीके लिए हिंसक नहीं होना चाहिए। उसमें किसीको भी नुकसानकर्त्ता भाव नहीं होना चाहिए, (अपना) काम निकाल लेना चाहिए।

सत्य-असत्य की पकड़ किस लिए?

सत्य बात को पकड़कर रखना वो झूठ बात है। सत्य की पूँछ पकड़े तो वो असत्य ही है और यदि असत्य को भी छोड़ दे तो वो सत्य है। पकड़कर रखने से सब बिगड़ता है। लोग सत्य की पूँछ पकड़कर रखते हैं इसलिए मार खाते रहते हैं। जैसे गधे की पूँछ पकड़कर रखते हैं न? गधे की लात खाता रहता है, लेकिन 'मैं छोडूँगा नहीं', कहता है!

जब कि हमें किसी भी बाबत में ज़रा-सा भी ग्रह या आग्रह नहीं, कि ऐसा ही होना चाहिए! एक सेकन्ड के लिए भी नहीं! ये सही है, ये सत्य है, ऐसा भी हमारा आग्रह नहीं होता। ज्ञान हुआ है, ऐसा आग्रह भी नहीं होता। आप कहो कि, 'ये गलत है', फिर भी हमारा आग्रह नहीं होता। आपकी दृष्टि में जो लगा वही सच्चा।

यदि हमें किसी जगह पर भी मतभेद नहीं होता हो, तो हम 'करेक्ट' रास्ते पर हैं ये बात तय है ऐसा मान लेना चाहिए। और यदि मतभेद पड़े तो समझ लेना चाहिए कि ये रास्ता अभी 'क्लियर' नहीं हुआ है। अभी तो ऊपर से पहाड़ तोड़ने हैं, बड़े-बड़े पत्थर आए तो उन्हें निकालना है। वर्ना रोड़ (सड़क) पर यदि पत्थर होगा तो टकराएगा ही न!

बाहर का कोई व्यक्ति हमें गलत ठहराए, गलत ठहराने जाए, तो अपनी बात पकड़कर रखे, और यदि वो ज़िद करे तो खुद भी ज़िद पर अड़ जाता है। ज़िद पर अड़ा, बहस करने लगा तो मिथ्यात्व घेर लेता है। फिर तो उपयोग खत्म हो गया। ये सारी बातें मिथ्यात्व फैलाती है। इसे तो भयंकर रोग कहते हैं।

सत्य-असत्य के लिए ज़्यादा ज़िद नहीं करनी चाहिए। बहुत खींचने से टूट जाता है। यदि सामनेवाला संबंध तोड़े, तो यदि हमें संबंध रखने की ज़रूरत हो तो जोड़ लेना चाहिए तो ही संबंध सँभलता है। क्योंकि ये सारे संबंध रिलेटीव हैं। उदाहरण के तौर पर पत्नी कहे कि 'आज पूनम (पूर्णिमा) है', आप कहो कि 'अमावस्या है', तो दोनों की किच-किच चलती है और पूरी रात बिगड़ती है और फिर सुबह,

पत्नी चाय का कप पटककर देती है, *तांता* रहता है। इसके बजाय हमें समझ जाना चाहिए कि इसने खींचना शुरू किया है तो टूट जाएगा, इसलिए धीरे से केलेन्डर में देखकर फिर कहना चाहिए कि, 'हाँ, तुम्हारी बात सही है, आज पूनम है।' ऐसा ज़रा-सा नाटक करने के बाद ही उसकी बात सही ठहरानी चाहिए, वर्ना क्या होगा? डोरी को ज़्यादा खींचकर पकड़ रखा हो और आप एकदम से छोड़ दोगे तो वो (पत्नी) गिर जाएगी। इसलिए डोरी धीरे-धीरे, सामनेवाला गिरे नहीं ऐसे सँभालकर छोड़नी चाहिए, वर्ना उसके गिरने का दोष (हमें) लगता है।

आपत्ति हो तो वचका हो जाएगा न?

अभी भी थोड़ी बहुत *खेंच* रही है या कम हो गई?

प्रश्नकर्ता : प्रकृति के भाग की *खेंच* इस विज्ञान के आगे चलती नहीं है।

दादाश्री : चलती नहीं है न? *खेंच* पकड़ता है, मूर्ख बनता है। मतलब ये सारी *खेंच* चली गई। डोरी छोड़ते ही नहीं थे, वो अब बीच में से छोड़नी पड़ी न?

प्रश्नकर्ता : एक ही वाक्य से ये *खेंच* चली गई। सत्संग में चंदूभाई ने कहा था कि 'मैं इस प्रकार समझा हूँ, मैं ऐसे समझा हूँ।' इसलिए फिर आपने ऐसा कहा कि, 'हमें क्या हर्ज है?' उनकी तरफ़ देखकर आपने ऐसा कहा। तब से मैंने सोच लिया कि यदि अभी भी हर्ज है तो अपना ही नुकसान है। हम किस लिए आपत्ति उठाएँ? आपत्ति नहीं हो तो फिर ठीक है। यदि आपत्ति है तो फिर हमारा नुकसान हो गया।

दादाश्री : आपत्ति तो होनी ही नहीं चाहिए न! यदि बहुत ही ख़राब बात, गलत बात बोलता हो तो भी हमें क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : 'हमें क्या हर्ज है' मतलब, हमें यानी शुद्धात्मा को क्या हर्ज है!

दादाश्री : नहीं। किन्तु हमें हर्ज ही क्या है? सामनेवाला तो शुद्धात्मा है और बेचारा जो बोल रहा है, वो उदयकर्म के अधीन बोल रहा है। उसमें उसकी सत्ता नहीं है। अब उसमें हमें क्या हर्ज है? हमारे यहाँ उसका चलन नहीं है, तो फिर हमें क्या फ़र्क पड़ता है? और हम तो बिना हर्जवाले हो ही गए हैं। आपत्ति उठाना, नुक़्स निकालना वो तो अपना काम ही नहीं है। एकदम सच्ची बात हो फिर भी हमें क्या आपत्ति है? आपत्ति हो तो नुक़्स निकालते हैं न! आपत्ति जैसे शब्द, हमने यहाँ धर्म की बाबत में त्याग दिए हैं, किन्तु संसारव्यवहार में ऐसा सब होता रहता है।

संसार में 'रिलेशन' संबंध है, यदि ऐसा समझे तो हल आता है। लेकिन यदि (उसे) सच्चा संबंध समझ लिया तो *खेंच* रहती है। 'रिलेशन' संबंध में, 'मेरा सच्चा' ऐसा नहीं होता। 'ले, तेरा सच्चा', ऐसा कहकर हल लाओ।

पकड़ पकड़ी कि वचका हुआ

दूसरा कुछ देखने की ज़रूरत ही कहाँ रही? हमारे लक्ष्य में होता ही है, कि यह शुद्धात्मा है और अभी वह मेरे लिए फाइल के रूप में है। फाइल का मुझे क्या करना है वो मुझे समझना है। दो दृष्टि होती है हमारी, निश्चय से निर्दोष है, व्यवहार से निर्दोष है और फिर फाइल है, उस फाइल का समभाव से निकाल करो। और क्या? ऐसा करने से वो मेरे नाम पर कहीं क्लेम नहीं करेगा। वर्ना हम वहाँ पर गए हों तो आपत्ति उठाए। और आपत्ति उठाने से फिर *वचको* (अपने दृष्टिकोण को पकड़कर रखने से बात बिगड़ जाना) हो जाता है। और *वचको* हुआ कि कर्म बँधा गया। आपत्ति में से फिर *वचको* हुआ तो कर्म बँधते हैं। आपत्ति में हर्ज नहीं है, लेकिन *वचको* नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : '*वचको* नहीं होना चाहिए' मतलब क्या, इसे ज़रा समझाइए।

दादाश्री : आपत्ति का हर्ज नहीं है, लेकिन *वचको* कब हो जाता है, कि जब उस आपत्ति को पकड़कर रखते हैं। सामनेवाला यदि आपत्ति ज़ाहिर करें तो हम जाँच करके छोड़ दें, हम समझ जाएँ कि उसकी दृष्टि ही उल्टी है, और यदि हम पकड़कर रखेंगे तो उल्टा हम ही मूर्ख दिखेंगे। और यदि उसकी दृष्टि सीधी हो तो उससे कहना चाहिए कि, 'भाई, ऐसी बात है, तो तू सीधी तरह से बात को ले।' सामनेवाला व्यक्ति समझने के लिए तो हमेशा तैयार ही होता है।

यदि चतुर्थी और पँचमी में हर्ज आता हो, तो हम कहें कि चतुर्थीवाले भी सच्चे और पँचमीवाले भी सच्चे। तो फिर दोनों हमें छोड़ देते हैं। हम उन्हें कहें कि 'जाओ, आपकी दृष्टि से आप सच्चे हो, और वो भी सच्चे हैं। लेकिन भगवान महावीर की दृष्टि इससे अलग है', ऐसा कहकर आगे निकल जाना है। भगवान महावीर अलग कहना चाहते हैं। किसीभी बाबत की पकड़ पकड़कर रखना, उसके जैसा और कोई गुनाह इस दुनिया में नहीं है। आपत्ति होने की जब पकड़ हो जाती है, तब *वचको* हो जाता है। इसलिए कवि ने गाया है न...

प्रश्नकर्ता : '*वांधा* (आपत्ति) और *वचका* सब, अज्ञान मान्यताएँ उसने दी उड़ा।'

दादाश्री : आपत्ति, *वचका* और अज्ञान मान्यताएँ आपकी हमने ले ली हैं। (निकाल दी हैं।) प्योर बना दिया है। दूसरा कुछ आपका निकाला है? हमारे महात्माओं को किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं होती। समभाव से निकाल कर देते हैं।

एक ही लक्ष्य रखना, कि 'आत्मा जानना है।' 'ये करना और वो करना', ऐसे आग्रह में मत पड़ना। जिस समय जो हुआ वो ही सही।

खेंच, शास्त्रों के ज्ञान की

लोग कहते हैं न कि, 'हमने शास्त्रों को समझ लिया है', मतलब सबकुछ समझ लिया है। फिर उनके पास कोई जाकर कहे कि 'साहब, हमें समझाइए।' तो वो क्या समझाते हैं?

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर तो सिर्फ करने के लिए कहते हैं! 'ये करो और वो करो, आप ऐसा नहीं करते और आप वैसा नहीं करते।' ऐसी ही सारी बातें सुनी हैं।

दादाश्री : यदि वो लोग एक व्यक्ति को भी सुधार दें तो मैं कहूँ कि, 'भाई, इसने शास्त्रों को समझा है।' सभी शास्त्रों को पढ़नेवाला, यदि वो बाहर के एक ही व्यक्ति को सुधार दें तो मैं कहूँ कि 'सही है, तुम्हारी पढ़ाई सही है।' उसे अपनी पढ़ाई की ही *खेंच* होती है। सामनेवाले की पढ़ाई के बारे में उसे कुछ पड़ी नहीं होती, उसे तो अपनी पढ़ाई की ही *खेंच* होती है। हमें तो सामनेवाले की पढ़ाई के बारे में पता होता है, *खेंच* नहीं होती। हमारी पढ़ाई की *खेंच* नहीं होती। उसकी (सामनेवाले की) पढ़ाई, क्या पढ़ा है और क्या नहीं (उस पर दृष्टि होती है)। एडजस्ट हो जाते हैं। सामनेवाला चाहे जिस धर्म का पालन करता हो, चाहे जो व्यक्ति हो, हम एडजस्ट हो जाते हैं। हमारे पास एडजस्टमेन्ट ही होता है और इससे उसे लाभ ही प्राप्त होता है।।

बढ़े बोझा, बातों के तोल से

हमें कोई चाहे कुछ भी बोले उसके साथ हमें क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : मेरे फादर (पिताजी) को आपके दर्शन करने के लिए आने को कहा तो आपके लिए ऐसा-वैसा बोलने लगें।

दादाश्री : इसलिए मौन रहना चाहिए। ज़्यादा यहाँ पर लेकर मत आना।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमें तो बुरा लगता है न, दादा हमें बहुत प्रिय हैं, इसलिए?

दादाश्री : हाँ, किन्तु बुरा लगाने के बजाय

हम मौन रहें कि वो फिर से ऐसा नहीं करें तो अच्छा है न। मतलब उन्हें ऐसा मौका नहीं देना चाहिए। यदि यहाँ आए, तो उन्हें उल्टा बोलने का सूझता है न? यदि हम दादा के बारे में अच्छा बोलें तो वो उल्टा बोलेंगे, इसलिए दादा के बारे में कोई बात ही नहीं करनी चाहिए। अर्थात्, हम पकड़ पकड़ें कि हमारे दादा ऐसे हैं, तो उस वक्त वो ज़्यादा पकड़ पकड़ेंगे। इसलिए ऐसा नहीं कहना चाहिए। हमारा मार्ग खींचातानी का नहीं है। ये तो मोक्षमार्ग है। जगत् में हर जगह खींचातानी का मार्ग है। सब का मार्ग अलग है और ये मार्ग अलग है।

बातों का तोल नहीं करना चाहिए। जो तोल करने गया वो पकड़ में आ गया। बातें तो बातें हैं, बातों के अनुसार होता नहीं है।

गाय-भैंस भी बातें करती हैं लेकिन कोई पकड़ नहीं होती कि 'ऐसी बात क्यों?'

प्रश्नकर्ता : मैं तो बिना काम के कुछ बोलता ही नहीं हूँ।

दादाश्री : ऐसा करने से क्या फल मिलेगा वो जानते नहीं है। इसलिए अपने लोगों को (ज़रूरत से ज़्यादा) टच में आने के लिए मना करते हैं। ज़्यादा टच में नहीं आना। लोगों के दिमाग़ का पारा खिसक गया हो, तो उल्टा बोलते हैं। पारा खिसक गया होता है या नहीं? आपने देखा है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले देखा है। हर जगह होते हैं ऐसे लोग।

दादाश्री : संसार का मार खाते रहते हैं फिर भी अपनी बात छोड़ते नहीं है। पिछले जन्म के पाप के आधार पर मार खाते रहते हैं फिर भी जब दु:ख आता है तो वही गलती दोहराकर फिर वही दु:ख फिर से खड़ा करते हैं। मतलब दु:खी इन्सान दु:ख ही बाँधता रहता है। सुखी इन्सान सुख बाँधता है। भगवान की राह पर चलनेवाला इन्सान एक प्रकार का ज़रा भय रखता है, ऐसी बातों में (हमें) उपेक्षा रखनी चाहिए।

संसार मतलब बुद्धि की दख़ल

पकड़ से ही सब बँधे हुए हैं। वो पकड़ ही उन्हें बाँधती है। ये सही और ये गलत, उसमें ही पड़े रहते हैं। 'ऐसा तो था ही न? कहाँ नहीं था ऐसा?' ये सारा बुद्धि का प्रदर्शन है। और, जो हुआ सो न्याय। उसे बुद्धि नहीं कहते।

न्याय खोजना है अभी भी! ज्ञान प्राप्ति से पहले न्याय खोजते थे, कोर्ट और वक़ीलों की ज़रूरत पड़ती थी न! अब ज्ञान प्राप्ति के बाद न्याय खोजने की ज़रूरत है? सिर्फ जो हिसाब था वो ही चुकाया न!

कोई भी बात दो मिनट से ज़्यादा लंबी चले तो भगवान वहाँ से खिसक जाते हैं! बात बिगड़ी कि भगवान चले जाते हैं। बातचीत करने में हर्ज नहीं है, किन्तु उसे पकड़ना नहीं चाहिए। बात को पकड़ने से बोझ बढ़ता है।

बाकी, अपना व्यवहार कैसा? कि मेरे साथ तो आपको ऐसा बोलना ही नहीं चाहिए! एक शब्द भी नहीं बोल सकते।

प्रश्नकर्ता : इन्होंने ही कहा था।

दादाश्री : वो सारी अपनी गलत भावुकताएँ हैं, यूज़लेस (व्यर्थ) भावुकताएँ। पकड़ किसी भी जगह नहीं पकड़नी है, तो फिर ज्ञानी के पास तो कैसे पकड़ सकते हैं? दूसरों के साथ, यदि इनके साथ पकड़ पकड़ी हो तो वो हमारा गुनाह है। ऐसी पकड़ पकड़ूँ तो गुनाह मेरा है।

प्रश्नकर्ता : दादा, पकड़ छोड़ने की बात तो ठीक है अब। दादा कहते हैं तो...

दादाश्री : उससे कहूँ कि 'भाई, ऐसा करना चाहिए', फिर भी वो नहीं करे। फिर से बिनती

करके उससे कहूँ कि 'भाई, ऐसा करो तो अच्छा है।' फिर भी वैसा नहीं करे तो हमारी भूल है वहाँ। किसकी भूल? मुझे ऐसा लगता है कि इतने बड़े संघ के साथ निभाता हूँ और सारे कार्य पूरे करता हूँ, उसका क्या कारण है? कि मैंने पकड़ बिल्कुल भी नहीं पकड़ी है। पकड़ पकड़ने से गुनाह लगता है और उसीसे ये दु:ख है। पकड़ बुद्धि पकड़वाती है और पागलपन करवाती है। लोग फिर पीछे से हँसते हैं। लोग हँसते हैं या नहीं हँसते?

प्रश्नकर्ता : हँसते हैं।

दादाश्री : लोग पीछे हँसते नहीं हैं? पिछले साल इन्होंने पकड़ी थी, इन्होंने भी पकड़ी थी। पकड़ पकड़ने से गलत दिखाई पड़ते हो न? अब नहीं पकड़ते न? पकड़ नहीं होनी चाहिए। ज्ञानी, भगवान महावीर का मार्ग, बिना पकड़ का मार्ग! इतने सारे लोगों के साथ एक भी मतभेद नहीं। एक मतभेद किसीके साथ नहीं। हम तो बालक से भी ज़्यादा कोमल होते हैं। बालक कहे कि, 'ऐसा करो' तो हम तुरन्त समझ जाते हैं कि ठीक है। सही कहता है वह। और पकड़वाले का तो, वो एक प्रकार का अंधकार कहलाता है। एक प्रकार का प्रेम है, लेकिन उस प्रेम को पगला (सनकी) प्रेम कहते हैं। आपको क्या लगता है?

उनको बहुत पकड़ है, ज़बरदस्त। लेकिन उन्होंने धीरे-धीरे पकड़ कम कर दी है, घिसघिसकर। घिस डालनी पड़ती है न! बहुत कम हो गई। वर्ना आज (आप) मुझे नहाने ही नहीं देते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आज तो मैंने कुछ नहीं कहा, दादाजी।

दादाश्री : हाँ। आप कुछ बोले नहीं। मैं वो ही देख रहा था कि आप क्या बोलते हो! ये भी पकड़ पकड़ते थे लेकिन उनकी समझ में भी आ गया।

पकड़ पकड़ने से, मार्ग में रुकावट

एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए। बोले कि गुनाह लगता है। सलाह तो देनी ही नहीं चाहिए। ओहोहो! जिनके द्वारा मोक्ष प्राप्त हुआ उन्हें सलाह देते हो! और हम तो कर्माधीन होते हैं, उदयाधीन होते हैं। हम तो खाते ही नहीं। मैं कुछ भी नहीं खाता। तब यदि वो अगर कहता है कि 'शक्कर नहीं खानी है' तो फिर मुझे क्या चीज़ छोड़ने को कहेगा वो?

प्रश्नकर्ता : दादा, मैंने पकड़ नहीं पकड़ी थी, बिनती की थी।

दादाश्री : हाँ, बिनती की लेकिन पकड़ पकड़ने से हमारे आगे के मार्ग में रुकावट आती है। प्रगति में रुकावट आती है और गलत दिखता है। तुरन्त छोड़ देना चाहिए। वो कहे, 'नहीं भाई, ऐसा है' उसने पकड़ा तो फिर हमें छोड़ देना चाहिए। और यदि व्यवस्थित में होगा तो ही छूटेगा उस समय। और पकड़ पकड़ा हुआ व्यवस्थित होगा तो मुश्किल से (मार खाकर) छोड़ना पड़ेगा, ज़बरदस्ती से छोड़ना इसके बजाय (समझकर छोड़ देना चाहिए)!

इनके पास भी पकड़ नहीं पकड़नी चाहिए। इनके पास भी पकड़ पकड़ी मतलब उनके जैसे हो गए आप। किसके जैसे हो गए? मेरे पास पकड़ पकड़ने से मेरे जैसे नहीं हो सकते, यहाँ तो गलत दिखता है। ऐसा तो सब होगा, किन्तु अब जल्दी राह पर आ जाए ऐसा कर डालो। हृदय तो बहुत अच्छा है, लेकिन दूसरा सब भी होना चाहिए न? ये कहते हैं, मैंने पकड़ पकड़वाई थी उनको। नहीं, मेरे पास पकड़ नहीं पकड़नी चाहिए। दूसरी जगह पकड़ता हो तो मैं छुड़वा दूँगा। पकड़ पकड़ी अर्थात् वही हमारा ग्रह बाधारूप है और उसी ग्रह ने हमें पकड़ा होता है। कोई बाहरवाला बाधारूप नहीं है। हमारे ग्रह ही बाधारूप हैं। क्या मुझे किसी भी जगह

पर पकड़ होगी? मतभेद ही नहीं है न! क्योंकि *(सामनेवाले की) खेंच* हुई तब से समझ जाता हूँ कि व्यवस्थित उस तरफ़ खींच रहा है।

मोड़नेवाले को ही मोड़ दे वो कैसा अहंकार

प्रश्नकर्ता : हर एक के, अपने जो धार्मिक अवसर आते हैं, तो उसे अपने धर्म के प्रति अभी भी *खेंच* रहती है, जैसे कि महावीर जयंती मनानी है। फिर कृष्ण जयंती आए, तो जो भाव उसे महावीर जयंती मनाने में आया था, वो भाव कृष्ण जयंती मनाने में नहीं होता।

दादाश्री : लेकिन उसमें जो *खेंच* होती है वो पुद्गल की होती है, आत्मा तो अलग रहता है।

प्रश्नकर्ता : मतलब दादा, मेरा टकराव होता है। पापा के साथ इसी बात पर टकराव होता है।

दादाश्री : नहीं, वो तो तुझे ऐसा है। सौ में से एकाध व्यक्ति ऐसा होता है। सब लोग ऐसे नहीं होते। दूसरे सब तो चोखे किल्यर लोग हैं। बिल्कुल किल्यर, सरल। तुझे सरल नहीं कह सकते। मतलब कोई ऐसा होता है। मोड़ने से मुड़ जाए ऐसा नहीं, मोड़नेवाले को ही मोड़ दे, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्ट ऐसा ही है दादा, मोड़नेवाले को मोड़ देता हूँ।

दादाश्री : हाँ, मतलब बहुत जटिल बात है न! ये दूसरे सब तो मोड़ने से मुड़ जाते हैं बेचारे। देर सबेर भी मुड़ जाते हैं।

अगला जन्म स्त्री का चाहिए, यदि तुझे साड़ी पहनने का शौक़ हो तो ऐसा करना। तब कहता है 'नहीं, शौक़ नहीं है। मुझे साड़ी नहीं पहननी है।' तब मैंने कहा कि 'तो सावधान रहना।' साड़ी पहनने का शौक़ होता है? किसी-किसी को होता है, सबको नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : वो मोड़ने से फिर मुड़ जाता है। अभी की ये जो अवस्था है चंदू की, तो पूर्वजन्म में उसने कौन-से ऐसे कारणों की भजना की होगी जिसके आधार पर ये अवस्था है?

दादाश्री : 'मैं अक़्लवाला और ये दूसरे ऐसे हैं (फ़जूल हैं)।' उनमें से तू किसी की सुनता ही नहीं। इसलिए तू कड़क बन गया। इसलिए फिर मुड़ता नहीं है। किसीकी तुलना में ही नहीं आता न! मोड़नेवाले को मोड़कर आता है।

पकड़ से रिलेटीव की ही सेफ़साइड

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरे देखने में ऐसा आया है कि मोड़नेवाले खुद मुड़ते नहीं हैं। चंदू ने तो ऐसा देखा है कि यदि मोड़नेवाले को पूरी बेलेन्सशीट तैयार करके दें कि भाई, ऐसा करते रहने से इतना नुकसान है और इतना फ़ायदा है, ऐसा है। इसके बावजूद भी वो सामनेवाला व्यक्ति खुद की पकड़ पकड़कर रखता है।

दादाश्री : पकड़ नहीं पकड़नी चाहिए। और यदि पकड़े तो उसके साथ कब अंत आएगा? (यदि आपको *धार्यु* करना हो तो) आपको पकड़ पकड़कर रखनी चाहिए। वर्ना सामनेवाले के पास मार खाना पड़ेगा। (व्यवहार में) जो पकड़ पकड़कर रखता है वो जीत जाता है। वो उसकी सेफ़साइड है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, सेफ़साइड शायद खुद के अहंकार की हो सकती है, बाकी रिलेटीव में कोई सेफ़साइड दिखती नहीं है। क्योंकि सारा.....

दादाश्री : नहीं, सेफ़साइड! तू पूरा उल्टा चल रहा है। इस बाबत में तेरा हंड्रेड परसेन्ट (सौ प्रतिशत) सब गलत है।

प्रश्नकर्ता : मतलब व्यवहार में भी पूरा गलत है?

दादाश्री : व्यवहार में भी गलत और निश्चय से भी गलत है। व्यवहार में तो सभी लोग मन में ऊब जाते हैं (तुझसे) कि ये क्यों झँझट करते होंगे?

प्रश्नकर्ता : दादा, वो तो मेरी समझ में आ गया है, क्योंकि पूरा व्यवहार ही लज्जित होता है। इसलिए पूरे व्यवहार के चले जाने से फिर निश्चय उड़ जाता है।

लिमिटेड बुद्धि की लिमिट

दादाश्री : ज्ञानी को किसी तरह की पकड़ नहीं होती। हम सामनेवाले को समझाएँ, फिर भी वो नहीं समझे तो हम कहते हैं 'आपकी दृष्टि से आपका बराबर है', ऐसा कहकर हम चलने लगते हैं। हम वहाँ पर कहाँ पूरी रात उनके साथ बैठे रहें? उनके साथ बैठे रहने से बात का अंत नहीं आता। क्योंकि आत्मा ऐसा नहीं है कि समझाया जा सके। मनुष्य के लिए आत्मा को समझना कोई खेल नहीं है। और जो कहते हैं कि उन्होंने आत्मा को समझ लिया है वो सब भेल (मिलावट) आत्मा ही है। भेल आत्मा मतलब, भेल क्या दाम से मिलती है, खाने की भेल? बारह या पंद्रह रुपये में मिलती है न, ऐसा ही पंद्रह रुपये दाम का आत्मा! आत्मा तो कैसा होता है? आत्मा तो परमात्मा है।

हाँ, बुद्धि खत्म हो जाए तब आत्मा समझ में आता है। वर्ना समझ में नहीं आता न! बुद्धि दख़ल ही करती है। बुद्धि लिमिटेड है। आपके ख़्याल में ऐसा कोई है जिसे आत्मा मिला हो? ऐसा कोई ख़्याल में है आपके?

प्रश्नकर्ता : ऐसा प्रयत्न ही नहीं किया है कि उसका अनुभव हो।

दादाश्री : नहीं, इसमें प्रयत्न करने से भी बात बने ऐसा नहीं है। जहाँ जाओगे वहाँ से भटककर फिर वापस आ जाओगे। आत्मा हाथ में आए ऐसी वस्तु नहीं है। आत्मा वेद स्वरूप नहीं है, पुस्तक स्वरूप नहीं है, शास्त्र स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वरूप वेद-शास्त्र-शब्द सबसे परे है। मनुष्य की बिसात नहीं है। मतलब, हिन्दुस्तान में जितने भी लोग कहते हैं न कि हमने आत्मा को पहचान लिया है। उनको ज़रा-सा छेड़ो तो पता चल जाता है, कि कैसा आत्मा पहचाना है? छेड़ने पर क्या करता है?

प्रश्नकर्ता : फन उठाता है (चिढ़ जाता है)।

दादाश्री : फन उठाता है, फन। संपूर्ण अहंकार खत्म हो जाए, संपूर्ण बुद्धि खत्म हो जाए तब आत्मा हाथ में आता है। ये लड्डू खाने जितना आसान नहीं है। इसलिए, पुस्तक पढ़ने में हर्ज नहीं है किन्तु पुस्तक पढ़ते समय हमारी समझ में जो नहीं आता हो उसे अंडरलाइन करना चाहिए। अपने आप ऐसा मान नहीं लेना चाहिए कि इसका मतलब यही है। क्योंकि इसमें मनुष्यों की बिसात नहीं है। इसलिए हमें अंडरलाइन करने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। उसे अंडरलाइन करके रहने देना चाहिए, फिर यदि हमें स्पष्टिकरण चाहिए तो स्पष्टिकरण करवा सकते हैं। वर्ना, मनुष्यों की बिसात नहीं है। दूसरे पुस्तकों के जैसा ये पुस्तक नहीं है (दादा का)। फिर अमुक लोग कहते हैं कि 'हमारा सही है' तो हम उसका सही कहते हैं। हमें उसका सही है ऐसा कहने में कोई हर्ज नहीं होता। लेकिन यदि सही में समझना हो तो उसे हम कहते हैं कि और थोड़ी देर राह देखना। वर्ना, वो खुद का सही कहे, तो हम भी 'तुम्हारा सही है' ऐसा कह देते हैं। 'आपका सही है' कहकर हम चलने लगते हैं, वहाँ पर कहाँ बैठे रहें? इसका तो अंत ही नहीं है न! अर्थात् आत्मा समझने की बाबत में कभी भी (अपने आप) मान लेना नहीं चाहिए। आपसे कह देता हूँ कि ये सारी रोंग बिलीफ़ है। आत्मा संबंध की सारी रोंग बिलीफ़ हैं। अभी तो लोग धर्म को भी समझें नहीं हैं। धर्म क्या है, वो भी समझें नहीं हैं!

बिना मार की सीट, शुद्धात्मा की

प्रश्नकर्ता : महात्मा गांधी, हिटलर उन सबके बारे में आपने बात की न, वे तो जीवन समुद्र पर नैया की तरह रहें। किन्तु जीवन तो व्यवस्थित ही है। जो व्यवस्थित में हो वो ही आता है। तो फिर

उनके बारे में क्या सोच विचार करना? हिटलर का जन्म, युद्ध होना, महात्मा गांधी का जन्म होना, उनके साथ जो हुआ, उन सबका कारण महात्मा गांधी या हिटलर नहीं है। उसका कारण तो 'व्यवस्थित' है।

दादाश्री : वो ही तो मुख्य कारण है। वैसे रूपक में, व्यवहार में बात कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : नाटक के तौर पर बराबर है, आप कहना चाहते हो, वो नाटक के तौर पर बराबर है।

दादाश्री : नाटक में तो बात करनी पड़ती है न? बाकी, मुख्य कारण तो व्यवस्थित है। व्यवस्थित क्यों कहते हैं, क्योंकि जीवन की कोई सत्ता ही नहीं है, सत्ता सारी व्यवस्थित की है। निमित्त दिखता है, कि हिटलर ऐसा था, व्यवहार में बोलना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, वर्ना लोग समझेंगे नहीं न।

दादाश्री : हाँ, वर्ना कैसे समझेंगे?

प्रश्नकर्ता : हम एक तरफ़ व्यवस्थित कहते हैं। एक तरफ़ पिछले जन्म का यहाँ अमल में आता है। पिछले जन्म की इच्छाएँ, इस जन्म में अमल में आती हैं। मतलब व्यवस्थित ने हमारे पिछले जन्म की इच्छाओं का हिसाब व्यवस्थित रखा और वही व्यवस्थित इस जन्म की इच्छाओं का हिसाब व्यवस्थित रखेगा और फिर वो दूसरे जन्म में आएगा, ऐसा?

दादाश्री : दोनों, दोनों व्यवस्थित के अधीन हैं। हमने इसमें पकड़ पकड़ी कि, 'मैं कुछ हूँ', तो फिर तब तक मार खा, कहता है। और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो मार बंद हो गया। 'मैं कुछ हूँ' तब तक भेदबुद्धि है तब तक मार खा, कहता है। यह आरोपित भाव है। भेदबुद्धि मतलब आरोपित भाव। 'मैं चंदू हूँ', यह भेदबुद्धि। और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो फिर मार खाने का नहीं रहा। फिर जो मार खाता है वो अपनी समझ की कचाई के कारण है। वर्ना, मार खाने का बिल्कुल नहीं रहता। उसके बाद तो संपूर्ण वीतरागता रह सकती है। लेकिन खुद का जो मन भीतर है न, वो मन उलझाता है। उस घड़ी पर तो स्थिरता रहनी चाहिए।

स्वपद से छूटती है खेंच

हर कोई अपना स्वभाव बताए बगैर रहता नहीं। जब तक आत्मस्वरूप नहीं होता, तब तक आत्मस्वभाव नहीं दिखता। पुद्गल स्वभाव ही दिखता है।

प्रश्नकर्ता : मतलब जब खुद आत्मस्वरूप हो तो फिर आत्मस्वभाव दिखता है।

दादाश्री : पुद्गल स्वभाव पूरा हो जाता है और (खुद) आत्मस्वभाव जैसा हो जाता है। बिल्कुल उसकी नक़ल जैसा, डिटेडिटो (हू बहू) वैसा ही, तब पूर्णाहुति कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : यानी खुद आत्मस्वभाव की नक़ल उतारे, ऐसा डिटेडिटो।

दादाश्री : हाँ, इस तरफ़ आत्मा दिखता है और ये (चंदूलाल) भी आत्मा जैसा दिखता है।

प्रश्नकर्ता : मलब मूल आत्मा दिखता है और खुद आत्मा जैसा हो जाता है।

दादाश्री : हाँ। आग्रह तो मैंने छुड़वा दिए, आपको सबसे बड़ी *खेंच* में से छुड़वा दिया, क्या ये सब नहीं होता था?

प्रश्नकर्ता : आग्रह और *खेंच?*

दादाश्री : हाँ, किसी भी प्रकार की *खेंच* नहीं होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मूल आत्मा की नक़ल उतारे उसके जैसा मतलब, ज्ञान-दर्शन-चारित्र भी वैसे ही हो जाते हैं?

दादाश्री : जैसे वो ज्ञान-दर्शन-चारित्र और

तप होता है वैसा ही यहाँ व्यवहार में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप होता है और इससे सारा आदर्श व्यवहार होता है। आग्रह-वाग्रह कुछ भी नहीं होता, कोई दु:ख भी नहीं होता और कोई झँझट ही नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : किन्तु व्यवहार मतलब पुद्गल ही हुआ न? तो फिर पुद्गल कौन से पुद्गल को स्पर्श करता है कि पुद्गल के सारे नखरे पूरे हो जाते हैं। फिर पुद्गल के सारे स्वभाव पूरे हो जाते हैं।

दादाश्री : मेरा पुद्गल, तुम्हारे पुद्गल से ऊँचा नहीं है क्या? ऊँचा होते-होते, मेरी चार डिग्री बढ़ जाए तो भगवान जैसा स्वरूप दिखे। मेरा वर्तन और सबकुछ ऐसा दिखने लगेगा। मतलब, देह भी भगवान हो जाता है। तीर्थंकरों के देह भी भगवान हो गए थे। इसलिए तो सभी लोग क़बूल करते हैं न!

प्रश्नकर्ता : मतलब देह तो वैसा ही रहता है, लेकिन भीतर का, बीच का फेरफार होता है? देह तो वही का वही रहा, चार डिग्री बढ़ने से फेरफार कौन-सी बाबत में किस तरफ़ होता है?

दादाश्री : देह के आधार पर ही लोगों को कचाई दिखती है। चार डिग्री के आधार पर लोगों को कचाई दिखती है। कपड़ें हैं, फँला हैं, अंगूठी है, बाल बनाए हुए हैं, खुराक है, ये सबकुछ जो दिखता है न! वो सब तब नहीं दिखता।

ज्ञानी का अविनय, बड़ा जोखिम

'उसकी (सामनेवाले की) समझ में नहीं आएगा' ऐसा नहीं बोलना चाहिए। पैसे खर्च करके आता है और पूज्यभाव से आपके सामने बैठता है। वो समझने के लिए ही तो आया है। फिर, 'तुम्हारी समझ में नहीं आएगा' ऐसा नहीं बोलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इसमें, 'मैं समझता हूँ और सामनेवाला नहीं समझता' ऐसा अहंकार है, दादा?

दादाश्री : अहंकार हो या नहीं भी हो, किन्तु ऐसा बोलना शोभा नहीं देता। व्यवहार सुंदर होना चाहिए। हमें इतने वर्षों से कभी किसी के साथ मतभेद नहीं हुआ है। लगभग लाख लोग मुझसे मिले होंगे। किन्तु मतभेद किसीके साथ भी नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : कोई चाहे जितने प्रश्न दादा से पूछे , दादा का अपमान करने लगे या बात को बीच में से काट दे, फिर भी दादा तो उसी तरह, वो ही मुक्त हास्य के साथ होते हैं।

दादाश्री : नहीं, कभी भी नहीं, ज़रा-सी भी *तरछोड़* (दुतकार) नहीं मारता।

प्रश्नकर्ता : उल्टा उससे ऐसा कहते हैं कि 'तेरी समझ में नहीं आया?' जब तक उसे समाधान नहीं होता, उसका कषाय चला नहीं जाता तब तक दादा नहीं छोड़ते। दादा उसे रात के बारह बजे तक बिठाकर रखते हैं, उसका समाधान हो जाए तो ही छोड़ते हैं।

दादाश्री : नहीं, सामनेवाले की जोखिमदारी नहीं है, ज्ञानी की जोखिमदारी है। वो तो बेचारा नासमझ है, वो चाहे जो भी बोले। ज्ञानी ऐसा नहीं बोल सकते।

बहुत अच्छी-अच्छी बातें निकली, किन्तु उन्होंने तो अंत में एक ही वाक्य पसंद किया। मैंने कहा कि 'आप अविनय करोगे, फिर भी मैं तो विनय में ही रहूँगा।' तब कहने लगे, 'आपकी ये बात हमें मंजूर हो गई।' अरे भाई, दूसरी अच्छी-अच्छी बातें की वो कहाँ गई? हाँ, आप तो अविनय करोगे ही। आप में यदि विनय होता तो आप अविनय करते ही नहीं। और दूसरा कोई यदि अविनय करता हो, विनय समझकर, तो फिर उसकी जोखिमदारी है। फिर भी हमें उसे समझाना चाहिए कि भाई ऐसा अविनय करने की ज़रूरत नहीं है, बैठ जा। तुझे यदि मुझे गालियाँ देनी हो तो गालियाँ दे, मारना हो तो मार। किन्तु तू अविनय मत कर। ज्ञानी का

अविनय करना, वो तो बहुत बड़ा जोखिम है। इसलिए अंत में हम उन्हें यहाँ से समझाकर भेज देते हैं।

दो-चार लोगों को यहाँ से निकालना पड़ा था, कि आप लोग फिर से यहाँ पर आओगे तो आपका नुकसान होगा, तो उनमें से एक कहने लगा कि 'नहीं, मैं तो यहाँ वापस आऊँगा ही।' तब मैंने कहा, 'आपका यहाँ पर नुकसान होगा।' ऐसा कहकर, बहुत शांति से समझा-बुझाकर फिर उनका यहाँ आना बंद किया था। वो कहता है, 'नहीं मैं तो यहाँ आऊँगा ही' क्योंकि उसने शास्त्र की पकड़ पकड़ी होती है। और फिर यहाँ पर एडजस्ट भी हो जाता है। और दूसरे दिन फिर शास्त्र की बातें करने लगता है। इसलिए मैंने कहा, 'यहाँ ज्ञानी पुरुष के साथ ऐसा करने से तेरा मन दिन-ब-दिन बिगड़ता जाएगा और तेरा नुकसान होगा। इसके बजाय तू अब यहाँ पर आना छोड़ दे न, इसमें तुझे मज़ा नहीं आएगा, कोई हेल्प नहीं होगी।' इस तरह दो-चार लोगों को ना कहना पड़ा था क्योंकि हम तो मतभेद कर ही नहीं सकते न! हम तो एक शब्द भी नहीं बोल सकते। वो उल्टा-सीधा बोले तो उसे अधिकार है। ज्ञानी को तो जोखिमदारी है, संपूर्ण जोखिमदारी है।

ज्ञानी को अगर एक भूल करनी हो तो महान, महान, महान मुश्किल है। एक भी भूल नहीं कर सकते। ऐसा करे तो फिर ज्ञानी किस बात के? दो प्रकार की भूलें तो दिखनी ही नहीं चाहिए। एक तो ऐसी कि जो छोटे बच्चे भी समझ जाएँ कि ये चाचा ऐसा गलत कर रहे हैं और दूसरी ऐसी कि बुद्धिमान भी समझ जाए (जिसकी) छोटे बच्चों की समझ में नहीं आता। बुद्धिमान लोग समझ जाते हैं कि ये इनकी भूल है। ये दो प्रकार की भूलें हम में नहीं होनी चाहिए। वर्ना ज्ञानी किस बात के? ज्ञानी मतलब सबसे बड़ा जोखिमदारी वाला पद है। जोखिमदारी नहीं होती?

प्रश्नकर्ता : बहुत होती है।

दादाश्री : सामनेवाला व्यक्ति चाहे जो बोले, उसका उसे अधिकार है। लेकिन उसे दोष नहीं लगे इसलिए हम सँभाल लेते हैं। हम उसे बचा लेते हैं। हमारे निमित्त से उसे दोष नहीं लगना चाहिए।

जब तक मनुष्य में किसी भी प्रकार का आग्रह है तब तक वो भावनिद्रा में ही है। मोक्ष में जाने के लिए आग्रह वह गलत वस्तु है, ऐसा जब से समझ लेता है तब से जागृति शुरू होती है।

हम तो सबकुछ कह देते हैं, जैसा है वैसा। फिर जक (ज़िद) करे तो हम समझ जाते हैं कि बहुत भयंकर अज्ञानता है, वो खुद का अहित ही कर रहा है। इसलिए फिर हम आगे नहीं बोलते। हम मौन हो जाते हैं। जक पर चढ़ा यानी उसे मेरी बात समझ में ही नहीं आई है न? समझ में आए, तो क्या जक पर चढ़ेगा?

ज्ञानी की अनोखी रीत

प्रश्नकर्ता : आपके साथ यदि कोई रूठ जाए तो उसके प्रति आप कैसे रहते हो?

दादाश्री : बिल्कुल वीतरागभाव से। *खेंच*-वेंच कुछ नहीं, उसे मनाने की भावना भी नहीं। हमें ऐसा लगे कि मनाने से उल्टा होनेवाला है, तो बिल्कुल बंद! और हमें ऐसा लगे कि मनाने से सुल्टा होनेवाला है तो हम एकाध शब्द कहते भी हैं कि 'भाई, हमसे ज़रा भूलचूक हो गई, मगर आप बैठो न शांति से। भूलचूक तो कभी मेरी भी होती है और कभी आपसे भी हो जाती है', ऐसा कहकर उसे बिठाते हैं। लेकिन *खेंच* नहीं, वीतरागता होती है। निरंतर वीतरागता होती है! और उसके लिए किंचित् मात्र अभाव भी नहीं और भाव भी नहीं। और फिर 'दादा भगवान' से कह देते हैं कि उस पर कृपा उतारो। 'चंदूभाई' और 'चंदूभाई' के मन-वचन-काया, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे 'आपके' 'शुद्धात्मा' से कह देता हूँ कि 'चंदूभाई' पर कृपा उतारो। वो सारे 'कनेक्शन' मैं मिला देता

हूँ। फिर वीतरागता से रहता हूँ। वो रूठा हुआ और मैं सीधा, हमारा व्यवहार चलता रहता है। थोड़े समय के लिए वो दुविधा में रहता है, फिर सब निकल जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा होता है न कि कोई रूठनेवाला व्यक्ति हो उसे यदि सामने से प्रोत्साहन नहीं मिले तो उसका तरीका उसे अपने आप छोड़ देना पड़ता है?

दादाश्री : ऐसे व्यक्ति को हम प्रात्साहन नहीं देते। कभी भी, ज़रा-सा भी नहीं देते। प्रोत्साहन देने से तो ऐसा व्यक्ति टेढ़ा चलता है।

आग्रह छोड़े, वह वीतराग धर्म में

वीतरागता का मार्ग किसे कहा है कि आपने यदि 'चतुर्थी है' ऐसा पकड़कर रखा हो तो मैं खींचकर देखता हूँ कि 'नहीं भाई, पँचमी है।' किन्तु यदि आप अपनी बात को छोड़ते नहीं हों तो मैं अपनी बात छोड़ दूँ, तो मैं वीतराग धर्म में हूँ और जो नहीं छोड़ते वो वीतरागधर्म के बाहर हैं। जो खुद का आग्रह छोड़ दे, वो वीतराग धर्म में है। और जो खुद का आग्रह नहीं छोड़ता वो वीतराग धर्म के बाहर है। इसलिए मुझे तो छोड़ ही देना पड़ेगा। पंचमी वाले को छोड़ देना चाहिए। जो ज़्यादा खींचता है उसे तो हम यहाँ तक कहते हैं कि चार लोग इस तरफ़ से डोर खींचते हो और चार लोग उस तरफ़ से डोर खींचते हो, इस डोर में यदि उस तरफ़वालों का बहुत जोश हो, बहुत *खेंच* हो तो इस तरफ़वालों को छोड़ देना चाहिए, किन्तु छोड़ो तो एकदम से नहीं छोड़ देना, वर्ना सब लोग गिर जाएँगे। इसलिए धीरे-धीरे छोड़ना। मैंने किस तरह आपको छोड़ने के लिए कहा?। एकदम से मत छोड़ देना वर्ना वो लोग गिर जाएँग न?

प्रश्नकर्ता : छोड़ क्यों देना चाहिए, ये बात समझ में नहीं आई।

दादाश्री : सामनेवाले बहुत खींचते हों और हम भी खींचते हैं तो वो डोर तो हमारी रोज़ की खेलने की चीज़ है, फिर कल भी ज़रूरत पड़ेगी न, और फिर टूट जाएगी तो गांठ लगानी पड़ेगी, उसके बजाय कल गांठ ही नहीं लगानी पड़े इसलिए आज छोड़ दो न। वो भी छोड़ते समय सब लोग गिर नहीं जाने चाहिए। वर्ना डोर को फिर गांठ लगानी पड़ेगी। टूट जाए फिर, वो खींचें और हम भी खींचें, तो क्या रहेगा? गांठ नहीं लगानी पड़ेगी?

प्रश्नकर्ता : छोड़ दें तो गिर जाएँगे वो तो ठीक है, लेकिन यहाँ तो खींचें नहीं तो गिर जाएँगे ऐसी स्थिति है। आत्मा की भव भ्रमणता बढ़ती हो, वो तो गिरने की निशानी है न?

दादाश्री : बिना ज्ञानी के, किसी भी काल में भवभ्रमणता कम होनेवाली नहीं है। ज्ञान के सिवा कोई ज़रा-सी भी भवभ्रमणता कम नहीं कर सकता। दूसरी सारी क्रियाएँ भवभ्रमण को बढ़ानेवाली हैं।

प्रश्नकर्ता : दूसरी सभी सम्यक् क्रियाएँ भी, बढ़ानेवाली हैं?

दादाश्री : हाँ, सम्यक् क्रियाएँ सोने (स्वर्ण) की बेड़ी समान होती हैं। और वह असम्यक्, मिथ्यात्व क्रियाएँ लोहे की बेड़ी समान है। लेकिन (अंत में) बेडियोंवाला मार्ग है। मोक्षमार्ग में क्रियाएँ नहीं होतीं। मोक्षमार्ग में समझ होती है, समझ से ही मोक्ष में जा सकता है। समझ में आ जाना चाहिए। खुद आत्मा ही है, परमात्मा ही है।

ज्ञानी कृपा से निकले खेंच

प्रश्नकर्ता : संसार चलाना मतलब क्या दादा?

दादाश्री : जब तक देह है तब तक संसार रहनेवाला है न! संसार दौरंगी चलता है न। (संसार की ओर भी और आत्मा की ओर भी, ऐसे दोनों ओर चलता है न।) ऐसी भक्ति अच्छी रहती है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा संसार करवाना है उसके

पास! दौरंगी जैसा संसार करवाना है?

दादाश्री : और कोई चारा ही नहीं है न।

प्रश्नकर्ता : मुझे तो आज्ञा में रहना है। पाँच आज्ञा और ज्ञान की जागृति में रहना है। ऐसी भक्ति में नहीं पड़ना है।

दादाश्री : अपनी मर्ज़ी के मुताबिक थोड़े ही होता है?

प्रश्नकर्ता : दादा हों, तो क्या नहीं हो सकता? दादा कर दें तो होता है या वो आज्ञा में रहे तो होता है?

दादाश्री : मैं तो हर तरह से कृपा बरसाता ही हूँ, यदि हो जाए तो अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : बस, ये बराबर है।

दादाश्री : खींचने जाए तो काम में नहीं आता न! अभी तो कृपा की वजह से चलता है। किन्तु अभी तो आप इस बात को जान लें और समझ लें। ये *खेंच* निकल जाएगी, जब तक ज़्यादा कर्ज है तब तक *खेंच* है। कर्ज कम होगा तब *खेंच* निकल जाएगी। फिर ब्रोड माइन्ड (विशाल मन का) हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मुझे कई बार ऐसा विचार आता है कि हम लोग ऐसे कचरे जैसे हैं, दादा हमें कैसे चला लेते हैं? फिर आज समझ में आया कि कृपा की वजह से चल जाता है।

दादाश्री : कृपा रहनी ही चाहिए। कृपा नहीं रहे उसका क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : खत्म हो जाता है।

दादाश्री : मंगलदास से कहना है कि 'जिसमें दादा राज़ी उसमें मैं राज़ी। यदि दादा कहें कि आज इस गाड़ी से जाना है तो उसमें मैं राज़ी। दादा कहे कि उस गाड़ी में जाना है तो उसमें भी राज़ी। मुझे कोई *खेंच* नहीं रखनी है।' फिर भी तू मेरे साथ आएगा न? ऐसा ब्रोड माइन्ड कर डाल।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : मेरे साथ घूमने से आपको पता तो चल गया है न कि इसकी बहुत क़ीमत है। इसलिए हमें ऐसा कुछ करना है कि जगत् आफ़रीन हो जाए। पकड़ नहीं, दूसरा सब तो ठीक है लेकिन पकड़ नहीं होनी चाहिए।

प्रतिक्रमण के पेच निकाले खेंच

प्रश्नकर्ता : पहले की अमुक जो पकड़ पकड़ी होती है, वो अब हम समझते हैं कि ये सब गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए, लेकिन फिर भी इच्छा नहीं होने के बावजूद भी वो पकड़, पकड़ ली जाती है। बाद में पता चलता है, पछतावा होता है, प्रतिक्रमण होता है, किन्तु वो पकड़ें कब छूटेंगी?

दादाश्री : उसे तो हम छोड़ देते हैं और छूट जाते हैं। यदि प्रतिक्रमण करें तो छूट जाती हैं। जैसे-जैसे उनके प्रतिक्रमण करें वैसे-वैसे दूर (अलग) होती जाती हैं। जितने प्रतिक्रमण करें उतनी दूर होती जाती हैं।

सरल होने से हल निकले पकड़ का

सरल मतलब सच्ची बात हो तो तुरन्त मुड़ जाए (स्वीकार करे)। अपना आत्मा क़बूल करे ऐसी बात हो तो तुरन्त फिर जाए, वहाँ पकड़ के नहीं रखे। यदि पकड़ के रखे तो उसे सरल नहीं कहते। मतलब पकड़ नहीं रखनी चाहिए न! पकड़ के रखने का तो बहुत बड़ा गुनाह लगता है, ज़्यादा गुनहगारी है।

प्रश्नकर्ता : दो व्यक्तिओं के बीच नासमझी उत्पन्न हो और गलतफ़हमी उत्पन्न हो तो वादविवाद हुए बगैर रहता ही नहीं।

दादाश्री : तो फिर वहाँ पर बंद रखना चाहिए (बहस नहीं करनी चाहिए)।

प्रश्नकर्ता : मतलब किसी भी बात पर गलतफ़हमी उत्पन्न हो और सामनेवाला व्यक्ति कहे 'आप सही नहीं हो' तो फिर उस बात को छोड़ देना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, छोड़ देना चाहिए, उसमें क्या हर्ज है? नहीं छोड़ें तो सामनेवाले व्यक्ति के मन में बात रह जाती है न, कहेंगे, 'इन्होंने ऐसा क्यों कहा?' अरे, तब मैं कहूँ, ''जो बोला गया क्या वो 'व्यवस्थित' नहीं है? उसने जो पूछा क्या वो भी 'व्यवस्थित' नहीं है?'' इस प्रकार हमारे पास बात का हल होता है। वर्ना इन सब बातों का तो कब अंत आएगा? लेकिन हम हल निकाल लेते हैं।

'इनका सही है और उनका गलत है' ऐसा कहना वो हमारी भूल है। हमें तुरन्त ही ऐसा मान लेना चाहिए कि, 'उनका सही और हमारा गलत।' ऐसे कहकर चलते बने, तो उनको भी दख़ल नहीं रही न। किसीका भी 'क्लेइम' (दावा) नहीं रहता फिर। किसीका 'क्लेइम' बाकी रखकर हम छूटें, ऐसा होता नहीं है न।

ज्ञान से हल आए, अहंकार की जक का

अहंकार अभी भी अंदर भरा हुआ है इसलिए वो चढ़ेगा तो सही न (अपना भाग तो अदा करेगा)। फिर भी, ये निकाली (डिस्चार्ज) अहंकार है, ये सच्चा अहंकार नहीं है। फिर भी 'खुद' 'उसका' (अहंकार का) पक्ष लेता है। सच-झूठ करवाने निकला बड़ा! ऐसा नहीं होना चाहिए।

ज़िद पर अड़े न, तो आत्मा पर ज़्यादा आवरण चढ़ जाते हैं। वैसे तो इस 'ज्ञान' के बाद अब व्यवहार मात्र रहा है। निश्चय से तो ज़िद भी गई, द्वेष भी गया, राग भी गया और सबकुछ गया। अब व्यवहार सचेतन नहीं है, व्यवहार अचेतन है। अचेतन मतलब, हम उसे फिर से छेड़ें तो वह जीवित हो जाता है, वर्ना वह फूटकर फिर गिर जाता है। उदाहरण के तौर पर, जौसे पटाखे का अनार होता है न! वैसे व्यवहार भी अपना लक्षण दिखाकर चला जाता है, और कुछ नहीं। उल्टा व्यवहार उल्टा लक्षण दिखाता है। अपने लक्षण दिखाता है, कि वह क्या था? फुलझड़ी थी या अनार था, ऐसे हमें सारे लक्षण पता चल जाते हैं, क्या फूट रहा है उस पर से?

पुण्यशाली को आती है कसौटी

जिस पर कसौटी आती है वो पुण्यशाली कहलाता है। इसलिए हल निकालना है, जक नहीं पकड़नी है। हमें अपने आप ही अपना दोष बता देना चाहिए। वर्ना जब सामनेवाला दोष दिखाता हो तो हमें खुश होना चाहिए कि, 'ओहोहो आपको हमारा दोष पता चल गया। बहुत अच्छा हुआ।'

खेंच छूटी तो खुद आत्मा

खेंच ही रोग है। *खेंच* छोड़ दें न, तो सबकुछ राह पर आ जाता है। जब *खेंच* छोड़ देते थे तब सब राह पर आ जाता था और *खेंच* पकड़ी कि (चंदूभाई और आत्मा) सब एक हो जाता है। वो खेंच तुड़वाने के लिए ही तो हम सामनेवाले से कहते हैं कि तू ऐसा करना। जब तक *खेंच* है तब तक चंदूलाल। *खेंच* छूटी की तुरन्त आत्मा हो गया। हमें तो दादा के पास रहने मिला वो भी आश्चर्य है न! आपको इसमें कुछ समझ में आता है? कुछ आपके काम का है?

प्रश्नकर्ता : सब काम का ही है। मुझे ऐसा लगता तो है कि ये (चंदू) *खेंच* रखता है, इतना मेरी समझ में आता है। लेकिन फिर पहले की बिलीफ़ पड़ी हुई है न...

दादाश्री : अरे, बिलीफ़ किसे पड़ी हुई है? क्या ऐसी ही बातें करते हो, आत्मा के तौर पर मैं आपको अलग कर देता हूँ, फिर भी?

'चंदू' को डाँटने से निकले खेंच

प्रश्नकर्ता : भीतर मुझे इतना समझ में आता है कि ये गलत हो रहा है, और कई बार मुझे ऐसी

भी लगता है कि मैं चंदूलाल से अलग हूँ, लेकिन फिर भी वापस सब एक हो जाता है।

दादाश्री : आप डाँटो तो सब अलग हो जाता है। झगड़ा हुआ तब से ही दृष्टि आमने-सामने हो जाती है। मतलब बातचीत में *खेंच* रखते हों तो, 'चंदूलाल क्यों *खेंच* रखते हो? क्या तुम में जानवरपन है? तो फिर *खेंच* क्यों रखते हो? बाहर कैसा दिखेगा?' ऐसा ठीक से डाँटो तो क्या गलत है? 'दादा कहते हैं तो आप सोचो तो सही', कहना। ऐसे दिन में पाँच-पचीस बार डाँट देते हों, तो अलग पड़ जाता है। ये हमारा वचनबल है।

प्रश्नकर्ता : आपने डाँटने को कहा न, तब से डाँटना शुरू हो गया है।

दादाश्री : ये तो अच्छा हुआ। डाँटना शुरू किया मतलब खुद आत्मा हो गया।

प्रश्नकर्ता : मैं तो फटकार देता हूँ, फिर ऐसे अच्छा रहता है। फिर अलग रहता है।

दादाश्री : आत्मा अलग रहता है।

प्रश्नकर्ता : कभी कुछ अच्छा करे तो धीरे से कहना भी पड़ता है कि, 'ये आपने अच्छा किया।'

दादाश्री : ऐसा भी कहना पड़ता है, वर्ना तो फिर बहुत रूठ जाता है, वो भी गलत है। फिर ऐसा भी कहना पड़ता है। ऐसा भी कहना चाहिए कि, 'दादा को राज़ी किया, आपने बहुत अच्छा किया।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन वैसे सभी में शुद्धात्मा दिखते नहीं है।

दादाश्री : शुद्धात्मा तो दिखते ही है। जो नहीं दिखता वो चंदूलाल को नहीं दिखता। हमें तो शुद्धात्मा दिखते ही है। डाँटों न, उलाहना देते रहो पूरे दिन, एक-दो दिन ऐसा करके देखना!

मुठ्ठी छोड़ी, तो तू अलग

आत्मा में रहना मतलब आज्ञा का पालन करना। सब राज़ी रहे ऐसा करना चाहिए। किसीको दख़ल नहीं हो ऐसा करना चाहिए। तूने अब तक किसीमें भी दख़ल की है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : दख़ल होने पर समझ में आ जाता है न कि तुम्हारी भूल है?

प्रश्नकर्ता : समझ जाता हूँ।

दादाश्री : अंत में तुम्हारा तो तुम्हें ही ठीक करना पड़ेगा न! दूसरा कोई भी नहीं कर देगा। हम तो बता देते हैं, उतना ही, और क्या करें?

आनंद आ गया न! बस, तुम्हें आनंद आ गया इसलिए बहुत हो गया। तुम यदि मना करो कि आनंद नहीं आया तो मैं क्या कर लूँगा? इन गलत मान्यताओं को क्या करना है? जिस मान्यता की हमारे हाथ में कोई सत्ता नहीं हो ऐसी मान्यता को क्या करना है? मुझे प्रधानमंत्री बनना है, ऐसी मान्यता जो मेरी सत्ता में नहीं है। उल्टा खुद का नुकसान होता है। आत्मा चला जाए तो फिर क्या रहा?

प्रश्नकर्ता : कुछ काम का नहीं।

दादाश्री : जितना मिला उतना सही। पकड़ पकड़ने से तो खुद पकड़ में आ जाते हैं। वो कहेगा 'मैं पकड़ पकड़ता हूँ' लेकिन पकड़ उसे पकड़ती है।

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ी बात कही, दादा। ऐसा ही हुआ है।

दादाश्री : यदि बंदर मटकी के अंदर चने लेने के लिए हाथ डाले और फिर चने लेकर मुठ्ठी बंद कर दे तो फिर हाथ मटकी के बाहर नहीं निकाल सकता, तब उसे ऐसा लगता है कि मुझे किसीने पकड़ लिया है और इस तरह खुद पकड़ में आ जाता है। ऐसी बात हो गई ये तो। अब यदि वो मुठ्ठी छोड़ दे तो समझ में आ जाए, अर्थात्

मुठ्ठी छोड़ दे तो अलग ही है। पकड़ छोड़ दे तो छूट जाएगा।

खेंच छूटी कि खिला मुक्त हास्य

प्रश्नकर्ता : हमारा भी मुक्त हास्य हो सके ऐसे संजोग हैं फिर भी किस वजह से मुक्त हास्य अटका है?

दादाश्री : हाँ, मैं मुक्त हास्य से आपको भी हास्य में लाकर भीतर से रोग निकालता हूँ। भीतर तरह-तरह की *खेंच* रही है। हँसता कहाँ है? रोता भी नहीं है। रोने के समय रोता भी नहीं है तो फिर हँसने के समय हँसेगा कैसे? मुक्त हास्य तो मुक्त पुरुष के अलावा किसी के पास नहीं होता। आपके भीतर सारे भूत भरे हुए हैं इसलिए मुक्त हास्य अटका हुआ है। ये ज्ञान जो दिया है वो मुक्त हास्य उत्पन्न करवानेवाला है।

'ज्ञानी पुरुष' निरंतर मुक्त अवस्था में होते हैं, जिससे सामनेवाले के भीतर भी सब खुल जाता है। हमारा मन मुक्त रहता है, किसी भी अवस्था में एक क्षण के लिए भी मन बँधता नहीं है। ज्ञानी पुरुष के दर्शनमात्र से ही सभी उल्लास (आनंद) में आ जाते हैं, और उससे तो कितने कर्म उड़ जाते हैं!

संपूर्ण वीतराग भगवान के सिवा कर्म रहित हास्य नहीं होता। ऐसा इस काल में उत्पन्न हुआ है! अक्रम विज्ञान के 'ज्ञानी पुरुष' के पास प्रकट हुआ है! जो काम बना दे ऐसा है! सर्व कर्म भस्मीभूत करे ऐसा है! ज्ञानी पुरुष को जब देखो, रात के दो बजे देखो तो भी एक ही प्रकार का मुक्त हास्य होता है। जब कि दूसरों के हास्य कषाय से रुके हुए होते हैं।

प्रश्नकर्ता : वैराग्य आए तो मुक्त हास्य अटक जाता है क्या?

दादाश्री : वैराग्य में तो उदासीनता आती है। उदासीनता को अधूरा कहा जाता है। मुक्त हास्य पूर्ण कहा जाता है।

मुँह सिले हुए (बंद) होते हैं। हम हँसना चाहे तो भी हँसने नहीं देते। कौन हँसने नहीं देता? भीतर जो गाँठें हैं उसकी *खेंच* रहती है। वो गाँठें हमें पद भी नहीं बोलने देती। यदि आप गाने का प्रयत्न करो तो गाँठ टूटती है, लेकिन यदि प्रयत्न ही नहीं करें तो क्या होगा? इसलिए मैं कहता हूँ न कि 'आज, आप गाओ।' मिल-झूलकर रहने से गाँठ उड़ जाती है।

हास्य किस कारण से आता है? ये बुज़ुर्ग चाचा क्यों ज़्यादा हँसते हैं? निर्दोषता है इसलिए, सरल हैं इसलिए। सरल मतलब जैसे मोड़ो वैसे मुड़ जाते हैं, सोने की तरह। उनका एक घंटे में जैसा आकार बनाना चाहो वैसा बनता है।

प्रश्नकर्ता : मतलब जैसे जैसे निर्दोषता बढ़ती है वैसे-वैसे हास्य बढ़ता है?

दादाश्री : हाँ, वो निर्दोषता का ही गुण है। आज के जमाने के एटीकेट (शिष्टाचार)वाले लोग टेबल पर हँस हँसकर खाना खाते हैं वो सब पोलीश्ड (बनावटी) कहलाता है। वो तो नए प्रकार का, तृतीयम कहलाता है। ऐसा बनावटी हँसने से तो नहीं हँसना अच्छा है। बनावटी बोलने से तो कम बोलना अच्छा है।

ये चाचा जब से आएँ हैं तब से ही उनको भीतर नए ही प्रकार का आनंद हो रहा है। वो सिर्फ मैं और वो ही जानते हैं। क्योंकि वो सरल हैं, इसलिए हमारे दर्शन से ही उनको आनंद आ गया।

प्रश्नकर्ता : आपके साथ बातें करते-करते हमें कभी-कभी मुक्तता से हँसी आती है, उसे मुक्त हास्य कह सकते हैं?

दादाश्री : हाँ, उस समय आप मुक्त हो जाते हो, ऐसे करते-करते प्रेक्टीस पड़ती है, वर्ना 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' ऐसा करने की

हमें क्या ज़रूरत है! उस समय भीतर का कचरा निकलता है और आप मुक्त हो जाते हो।

'हम बड़ी उम्र के हैं' ऐसा ख़्याल में नहीं रहे तो काम होता है। बालक जैसी अवस्था हो तो समभाव से निकाल अच्छी तरह से होता है। हम बालक जैसे हैं, इसलिए हम जैसा है वैसा कह देते हैं। ऐसा भी कह देते हैं और वैसा भी कह देते हैं, ज़्यादा बडप्पन क्या दिखाना?

निर्ग्रंथी बने योग्य पात्र

प्रश्नकर्ता : निर्ग्रंथ होने के लिए क्या करना पड़ता है?

दादाश्री : कोई गाँठ नहीं, बाहर की या भीतर की। मतलब किसी तरह की *खेंच* नहीं, पकड़ नहीं, निर्ग्रंथ। ग्रँथि यानी बँधा हुआ। एक प्रकार के अभिप्राय से बँधा हुआ, उसे ग्रँथि कहते हैं। निर्ग्रंथ, यानी अंदर भी बँधा हुआ नहीं और बाहर भी बँधा हुआ नहीं। अभी आपने एक वाक्य बोला, उसमें निर्ग्रंथ आया न?

प्रश्नकर्ता : 'निर्ग्रंथ दादा को नवनीत वंदो...'

दादाश्री : ग्रँथि छूटने के बाद, वे ज्ञानी (आत्म) दर्शन दें तो उस दर्शन से आत्मा मिलता है, बाकी आत्मा मिलने का और कोई रास्ता नहीं है। उनके दर्शन देने से ही, अँगुली निर्देश से ही। कृपा और अँगुली निर्देष दोनों इकट्ठे हो जाते हैं इसलिए हो जाता है। और पिछली सारी (ग्रंथियाँ) भूल जानी है, वो सब फेंक देनेवाला माल है। अभी तक जो किया था, जो ग्रंथियाँ थी, वो सब धूल में मिला देना है। तब कहते हैं 'तो क्या हम गलत रास्ते पर थे?' तब कहे, 'नहीं, लोगों ने आपको इस रास्ते पर चढ़ाया था।' लेकिन यदि नौवीं पायदान के बाद ऊपर चढ़ना हो तो नोवीं पायदान को छोड़ देना पड़ता है। नौवीं पायदान को साथ में लेकर नहीं जा सकते। ऊपर चढ़ना हो तो नौवीं पायदान साथ में लेकर जा सकते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : छोड़ना ही पड़ता है। चढ़ना हो तो छोड़ना पड़ता है। दसवाँ मिले तो नौवाँ छोड़ देना चाहिए।

दादाश्री : साथ में लेकर नहीं जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दसवीं पायदान मिली नहीं हो और नौवीं छोड़ दें तो बीच में लटक नहीं जाएँगे?

दादाश्री : नहीं, वो मिलती नहीं, वहीं पर हमारी *खेंच* है। नौवीं पायदान की *खेंच* की वजह से ये दसवीं प्राप्त नहीं होती। नौवीं की यह *खेंच,* कि ये चली ना जाए, इसलिए उसे पकड़कर रखता है इसलिए दसवीं प्राप्त नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : दसवीं पायदान चढ़ने की अब हमारी योग्यता है, उसका पता कैसे चलेगा?

दादाश्री : योग्यता उसे कहते हैं कि 'मैं जानता हूँ' वो सब छोड़ दे। अब तक 'मैंने किया है, मैं जानता हूँ' वो सब छोड़ दे उसे योग्यता कहते हैं। और कौन-सी योग्यता? अपने यहाँ पहली शर्त यही है न कि 'मैं कुछ जानता नहीं हूँ', ऐसा समझकर यहाँ आना तो आगे बढ़ोगे। वर्ना सब यूझलेस (व्यर्थ) है। जाना हुआ सब गलत है। इस जाने हुए को बेचने जाओगे तो एक आना (पैसा) भी कोई नहीं देगा। हाँ, उसका फल संसार है। रहने के लिए अच्छी जगह मिलेगी। मोटर-गाड़ी सब मिलेगा, लेकिन मुक्ति के लिए एक आना भी नहीं मिलेगा।

निबेड़ा, विज्ञान से ही

एकदम नई बात लगती है न? ये सारी बातें ऐसी लगती हैं न कि जैसे नई बातें सुन रहे हों? ये नया विज्ञान है, ये तो सुना हुआ और पढ़ा हुआ भी नहीं होता, जाना हुआ नहीं होता, कहीं भी सुनने में नहीं आया हो ऐसा अपूर्व कहलाता है। पहले कभी भी नहीं सुनी हो ऐसी बात को अपूर्व कहते हैं। और

जो सुना हो उसे परापूर्व कहते हैं, परंपरा ज्ञान। वो परंपरा ज्ञान और इसे अपूर्व कहते हैं। कभी कभार जब 'ज्ञानी पुरुष' प्रकट होते हैं तब इन सब बातों को खुला कर देते हैं। फिर जब वो नहीं होते तब इन बातों पर आवरण आ जाता है।

ये सारी बातें 'एक्सपिरियन्स'वाली, अनुभववाली ही बता रहा हूँ। यदि खुद ने अनुभव नहीं किया हो तो मेरे पास ज्ञान में दिखे हुए उपाय हैं। इन्सान को हल तो चाहिए न! वर्ना बिना हल के इन्सान उलझता रहता है। लोगों को हल नहीं मिलता इसलिए तो उलझ जाते हैं, सब लोग उलझ जाते हैं। इसलिए उलझन आए तब क्या करते हैं? और ये जगत् तो उलझन का ही कारखाना है। 'धी वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ'। मतलब ये 'इटसेल्फ पज़ल' हुआ है।

इसलिए मैं कहता हूँ न कि ये 'अक्रम विज्ञान' है। जो इसके लिए तैयार नहीं थे ऐसे लोगों को ये विज्ञान दिया है, मतलब इसकी 'बाउन्ड्री' में नहीं आए हों ऐसे लोगों को दिया है। किन्तु उनका भी पुण्य होगा तभी प्राप्ति होती है न? इसलिए मैंने कहा है कि व्यवहार में इस प्रकार से कार्य करवाना चाहिए कि सामनेवाले को किसीको दुःख नहीं हो। हमारा रुख (भाव) ऐसा होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : खूबी ये है कि आपके शब्द जो निकल रहे हैं वो 'एक्ज़ेक्ट' 'उसे' भीतर छूते हैं, उससे रोग निकलता है, दृष्टि बदलती है, और अंदर 'एक्ज़ेक्ट' क्रियाकारी होते हुए दिखता है, बहुत वैज्ञानिक लगता है सब!

दादाश्री : बात वैज्ञानिक हो तो ही लोगों का निबेड़ा आता है न, वर्ना निबेड़ा ही नहीं आता न!

जय सच्चिदानंद

'दादावाणी' पत्रिका के वार्षिक सदस्यों के लिए सूचना

आपको आपकी दादावाणी पत्रिका की सदस्यता समाप्त हो रही है उसका पत्ता कैसे चलेगा? यदि आपको मिली इस महीने की दादावाणी पत्रिका के कवर पर लगे हुए लेबल पर ग्राहक नं. के बाद # हो तो यह आपकी अन्तिम दादावाणी पत्रिका है। उदा. DHIA11250 # और यदि लेबल पर ग्राहक नं. के बाद ## हो तो अगले महीने आपकी सदस्यता समाप्त होगी। उदा. DHIA11250 ##. दादावाणी पत्रिका रिन्यु कराने के लिए पेज नं. १ पर दर्शाये गए मूल्य अनुसार मनी आर्डर या डिमान्ड ड्राफ्ट (पेयेबल अहमदाबाद) त्रिमंदिर अडालज के पत्ते पर भेजें। साथ ही अपना नाम, पूरा पत्ता (पीनकोड के साथ), फोन-मोबाइल नंबर, इ-मेइल आदि आवश्यक जानकारी अवश्य दें।

Form No. 4 (Rule No.8)

Information about 'Dadavani' Hindi Magazine

1. **Place of Publication :** 5, Mamtapark Society, B/h. Navgujarat College, Usmanpura, Ahmedabad-380014
2. **Periodicity of Publication :** Monthly
3. **Name of Printer :** Amba Offset, **Nationality :** Indian, **Address :** Basement, Parshvanath Chamber, Near New R.B.I. Usmanpura, Ahmedabad-380014
4. **Name of Publisher :** Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation, **Nationality :** Indian, **Address :** 5, Mamtapark Society, B/h. Navgujarat College, Usmanpura, Ahmedabad-380014
5. **Name of Editor :** Dimple Mehta, **Nationality :** Indian, **Address :** same as above.
6. **Name of Owner :** Mahavideh Foundation (Trust), **Nationality :** Indian, **Address :** same as above.

I, Dimple Mehta hereby declare that the above stated information is correct to my knowledge and belief.

sd/-

Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation

Date : 15-03-2011

(Signature of Publisher)

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सांनिध्य में मुंबई में आगामी सत्संग कार्यक्रम

दि. **५** से **७ मई** (गुरु से शनि), शाम ६-३० से ९-**सत्संग** तथा **८ मई** (रवि), शाम ५-३० से ९ -**ज्ञानविधि**
स्थल : एकता ग्राउन्ड, सांइबाबानगर ग्राउन्ड के पीछे, ओफ कोरा केन्द्र रोड, बोरीवली (वेस्ट). **संपर्क :** 9323528901

अडालज त्रिमंदिर में हिन्दी सत्संग शिविर

सत्संग शिविर : दि. १९ से २२ मई, सुबह ९-३० से १२, शाम ४-३० से ७

ज्ञानविधि : दि. २० मई (शुक्र), दोपहर ३-३० से ७, **अंबाजी यात्रा : दि. २३ मई** (सुबह से शाम तक)

सूचना : यह शिविर केवल हिन्दी भाषी मुमुक्षु-महात्माओं के लिए ही विशेष रूप से आयोजित की जाती है। **इस शिविर के लिए १ अप्रैल से ८ मई २०११ के दौरान रजिस्ट्रेशन होगा।** निम्नलिखित सत्संग केन्द्रों में से अपने पास के सत्संग केन्द्र पर अपना रजिस्ट्रेशन अवश्य करवाएँ। यदि आपके नजदीक में कोई सत्संग केन्द्र नहीं है, तो अडालज मुख्य सत्संग केन्द्र के रजिस्ट्रेशन विभाग में फोन नं. **079-39830400** पर अपना रजिस्ट्रेशन करवाएँ। रजिस्ट्रेशन कराने के बाद यदि आप किसी कारणवश नहीं आनेवाले हो, तो अपना रजिस्ट्रेशन केन्सल करवाना न भूलें। सेन्टर संचालको से सूचना है कि ९ मई को आपके सेन्टर की लिस्ट इ-मेल register@dadabhagwan.org या फेक्स 079-39830033 पर भेजना न भूलें। **यदि आप यात्रा में शामिल होनेवाले हों, तो आपका वापसी टिकट २४ मई का लें।**

अडालज	: (079) 39830400	**दिल्ली** :	9310022350	**कोलकता** :	033-32933885
भोपाल	: 9425024405	**जयपुर** :	9828422757	**पटना**	: 9431015601
इन्दौर	: 9039936173	**पाली** :	9461291542	**हैद्राबाद**	: 9989877786
जबलपुर	: 9425160428	**अमरावती** :	9823127601	**बंगलूर**	: 9590979099
भिलाई	: 9827481336	**रायपुर** :	9425245616	**चेन्नाई**	: 9380159957

पूज्य नीरूमाँ को देखिए टी.वी. चैनल पर...

भारत ✦ **'ज़ी जागरण'** पर हर रोज़ रात ९-३० से १० (हिन्दी में)
✦ **'अरिहंत'** चेनल पर हर रोज़ सुबह १० से १०-३० और शाम ५ से ५-३० (गुजराती में)
✦ **'दूरदर्शन-गिरनार'** पर हर रोज़ सुबह ७ से ७-३० और दोपहर ३-३० से ४ (गुजराती में)

USA ✦ **'TV Asia'** पर हर रोज़ सुबह ६-३० से ७ (गुजराती में)

UK ✦ **'विनस'** टीवी (स्काय चेनल ८०५) पर हर रोज़ सुबह ७ से ७-३० (गुजराती में)

USA-UK ✦ **'आस्था'** (डीश टीवी चेनल 849-युके, 648-युएसए) पर हर रोज़ सुबह ८ से ८-३० (गुजराती में)

✦ **समग्र विश्व में** (भारत के अलावा) **सोनी टीवी** पर (हर रोज़) सुबह ७ से ७-३० (हिन्दी में)

पूज्य दीपकभाई को देखिए टी.वी. चैनल पर...

भारत ✦ **'दूरदर्शन'** पर हर गुरुवार सुबह ९ से ९-३० (हिन्दी में) - **नई दृष्टि, नई राह**
✦ **'आस्था'** पर हर रोज़ रात १०-२० से १०-५० (हिन्दी में)
✦ **'अरिहंत'** चेनल पर हर रोज़ सुबह ९ से ९-३० और शाम ८-३० से ९ (गुजराती में)
✦ **'दूरदर्शन-सह्याद्रि'** पर सुबह ७-३० से ८ (सोम-मंगल) तथा और सुबह ७-१५ से ७-३० (बुध-शुक्र)
✦ **'दूरदर्शन' डीडी-गिरनार** पर हर रोज़ रात ९ से ९-३० - 'ज्ञानप्रकाश' (गुजराती में)

USA ✦ **'SAHARA ONE'** पर सोम से शुक्र, सुबह ९ से ९-३० (गुजराती में)

UK ✦ **'विनस'** टीवी (स्काय चेनल ८०५) पर हर रोज़ सुबह ७-३० से ८ (गुजराती में)

USA-UK ✦ **'आस्था'** (डीश टीवी चेनल 849-युके, 648-युएसए) पर हर रोज़ रात ९ से ९-३० (गुजराती में)

मार्च २०११
वर्ष - ६, अंक - ५
अखंड क्रमांक - ६५

दादावाणी

RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. GAMC - 1500/2009-2011
Valid up to 31-12-2011
LPWP Licence No. CPMG/GJ/15/2009-2011
Valid up to 31-12-2011
Posted at AHD. P.S.O. Sorting Office Set - 1
on 15th of each month.

छूटकारा चाहिए तो आग्रह-पकड़ छोडकर एडजस्ट हो जाव

संजोग को एडजस्ट हो जाए, उसका नाम मनुष्य। यदि 'एडजस्टमेन्ट' हरेक संजोग में करना आए तो आखिर मोक्ष तक पहुँच सके ऐसा गज़ब का वह साधन है। यदि आपके साथ कोई भी डिस्एडजस्ट होने आए, उसे आप एडजस्ट हो जाइए। रोज़मर्रा जीवन में सास-बहु का या देरानी-जेठ़ानी का डिस्एडजस्टमेन्ट होता हो तो, जिसे इस संसार चक्र से छूटना हो, उसे एडजस्ट हो ही जाना चाहिए। पति-पत्नी में भी एक तोड़ तोड़ करता हो तो दूसरे को जोड़ लेना चाहिए, तभी संबंध टिकेगा और शांति रहेगी। इस रिलेटिव सत्य में आग्रह, जक की जरा-सी भी जरूरत नहीं है। खुद की पकड़ को पकडकर रखना बहुत बड़ा गुनाह है। वह ज्यादा गुनहगार है।

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation-Owner. Printed at Amba Offset, Basement, Parshvanath Chambers, Usmanpura, Ahmedabad-380014.